अध्याय—3

समास प्रकरण

केवलसमासः।

समासःप चधा। तत्र समसनं समासः।

स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः। प्रायेण पूवपदार्थप्रधानो व्ययीभावो द्वितीयः। प्रायेणोत्तरपदार्थ-प्रधानस्तत्पुरुषस्त तीयः तत्पुरुषभेदःकर्मधारयः, कर्मधारय-भेदो द्विगु। प्रायेणा न्यपदार्थ-प्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः। प्रायेणोभयपदार्थ-प्रधानो द्वन्द्वः प चमः।

व्याख्याः **समास**—इति-समास प्राच प्रकार का होता है।

तत्रेति—समसन-संक्षेप को समास कहते हैं।

अनेक पदों का एक पद बन जाना समसन होता है। समास का शब्दार्थ है संक्षेप, अनेक पदों का एक पद बन जाना संक्षेप ही है।

अब समास के पाचों प्रकारों के नाम और लक्षण क्रमशः बताये जाते हैं।

स चेति—वह समास विशेष नाम से रहित केवल-समास नामक प्रथम है अर्थात् जिस समास का कोई विशेष नहीं कहा गया, उसे केवल समास कहते हैं, यह समास का पहला प्रकार है।

जैसे-भूतपूर्वः (जो पहले हो चुका)-यहां 'सहं सुपा 2.1.4' से समास हुआ है। वह किसी विशेष समास के अधि ाकार में नहीं है, इसलिये केवल समास है।

प्रायेणिति—जिसमें प्रायः पूर्व पद का अर्थ प्रधान हो, वह अव्ययीभाव समास कहा जाता है, वह समास का दूसरा भेद है।

प्रधानता का निर्णय अग्रिम पदार्थ से अन्वय के द्वारा किया जाता है। जिस अर्थ का अन्वय अग्रिम पदार्थ के साथ होगा, वह प्रधान माना जाएगा।

जैसे-अधिहरि (हरि में)-यहां पूर्व पद अधि का अर्थ 'में' प्रधान है क्योंकि उसी का नाम अन्य पदार्थों से अन्वय होता है, इसलिये यह अव्ययीभाव समास है।

प्रायः कहने से-उन्मत्ता गङ्गा यत्र स उन्मत्तगङगो नाम देशः-जहां गङ्गा उन्मत्त है वह उन्मत्तगङ्ग नाम देश है- यहां उन्मत्तगङ्ग मे ंपूर्व पद का अर्थ प्रधान नहीं, अपितु देश का रूप अन्य पद का अर्थ प्रधान है, पर अव्ययी भाव के अधिकार में होने से यह भी अव्ययीभाव समास है। 'प्रायेण' यदि न कहा जाय तो इसकी अव्ययी भाव संज्ञा न हो सकेगी।

प्रायेणोत्तरेति—जिसमें प्राय उत्तरपद का अर्थ प्रधान हो, वह तत्पुरुष समास कहा जाता है। यह समास का तीसरा पद है।

जैसे-राजपुरुषः (राजा का आदमी, सरकारी आदमी) यहां उत्तरपद पुरुष का अर्थ प्रधान है, क्योंकि उसी का अन्वय आगे आनेवाले पदार्थों से होता है-इसलिये यह तत्पुरुष समास है।

प्राय कहने से जहां 'प चाना तन्त्राणां समाहारः—'पाच तन्त्रों का समाहार' इस विग्रह में समाहार अर्थ में तत्पुरुष होता है, वहां भी लक्षण घट जाय, अन्यथा समाहार अन्य पद का अर्थ है, उत्तरपद का अर्थ नहीं। प्राय कहने से इसकी भी तत्पुरुष संज्ञा हो जाती ह।

तत्पुरुषभेद-इति—तत्पुरुष का ही एक भेद कर्मधारय है। जहां विशेष्य और विशेषण का समास होता है, उसे कर्मधारय कहते हैं। यह तत्पुरुष का ही विशेष प्रकार है, क्योंकि यहां उत्तरपद का अर्थ प्रधान होता है।

जैसे-नीलोत्पलम् (नीलं च तत् उत्पलं च-नीला कमल)-यहां नील विशेषण और उत्पल विशेष्य का समास होता है। अतः यह कर्मधारय समास है।

कर्मधारयेति—कर्मधारय का एक प्रकार द्विगु है।

विशेष्य और विशेषण के समास में यदि विशेषण संख्यावाचक हो तो उसे द्विगु कहते हैं। जैसे-**प ़्चगवम्-प चानां गवां समाहारः** पांच गौओं का समाहार-यहां विशेषण प च संख्यावाचक है, इसलिये यह द्विगु समास है

प्रायेणान्येति—जिस समास में प्रायः अन्य पद का अर्थ प्रधान हो, वह बहुब्रीहि होता है, यह चौथा समास है। जैसे-**लम्बकर्णः** लम्बे कानवाला-यहां लम्ब और कर्ण-इस समास के अन्तर्गत पदों से भिन्न पद का अर्थ प्रधान है, क्योंकि उसी अर्थ का और पदार्थों के साथ अन्वय होता है, इसीलिए यह बहुब्रीहि समास है।

प्रायः कहने का फल यह है कि बहुब्रीहि के अधिकार में आये हुए कुछ 'द्वित्राः' (दो या तीन) आदि समास भी बहव्रीहि कहे जाते हैं, अन्यथा उभय पदार्थ प्रधान होने के कारण उसे बहुब्रीहि न कहा जा सकेगा।

प्रायेणोभयेति—जिस समास में प्रायः दोनों पदों का अर्थ प्रधान न हो, वह पांचवां द्वन्द्व समास है। जैसे-**रामलक्ष्मणौ** (राम और लक्ष्मण)-यहां दोनों पदों का अर्थ प्रधान है, अतः यह द्वन्द्व समास है।

प्राय कहने का तात्पर्य यह है कि समाहार द्वन्द्व में समाहार अर्थ के अन्य पदार्थ होने पर भी संज्ञा हो जाती है।

इन पांच समासों[1] में बहुब्रीहि और द्वन्द्व अनेक पदों के भी होते हैं, शेष दो-दो पदों के होते हैं।

1. इन समासों के नाम नीचे लिखी द्व्यर्थक सूक्ति में बड़े सुन्दर ढंग से आये हैं-

द्वन्द्वो स्मि द्विगुरहं ग हे च मे सततमव्ययीभावः।
तत्पुरुष कर्म धारय येनाहं स्यां बहुब्रीहिः।।

कोई व्यक्ति किसी मजदूर को अपने यहां नोकरी करने के लिये कह रहा है (शायद युद्ध का ही जमाना होगा, नौकर मिलते न होंगे-हे पुरुष, मैं द्वन्द्व हूं अर्थात् पति-पत्नी दो हैं-तुम्हें काम कम करना होगा, मैं द्विगु हूँ अर्थात् मेंरे पास केवल दो बेल अथवा गौ हैं-इसलिये पशुओं का कार्य भी कम है। मेरे घर में सदा अव्ययीभाव है अर्थात् कम खर्च किया जाता है, खर्च अधिक तब होता है जब कार्य अधिक हो। इसलिए तुम कर्म धारय अर्थात् नौरी स्वीकार कर लो, जिससे में बहुब्रीहि-अर्थात् बहुत धान्यवाला हो जाऊं, मेरे पास बहुत धान्य हो जाय।

समर्थः पदविधि 2.1.1

पदसम्बन्धो यो विधिः, स समर्था श्रितो बोध्यः।

व्याख्याः पद सम्बन्ध की जो विधि हो, वह समर्थ पदों की ही होती है अर्थात् जहां सामर्थ्य होगा, वहीं पदविधि होती है।

पद अर्थात् सुबन्धको उद्देश्य बनाकर जो विधि होती है, उसे पदविधि कहते हैं। समास आदि विधियां पदविधियां हैं क्योंकि ये पदों को उद्देश्य करके ही होती है। सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है, सुबन्द पद होता है, इसलिये समास पदविधि है। पदविधि होने से समास उन्हीं पदों का होगा, जिनका परस्पर सामर्थ्य[1] होगा।

---

1. जहां पदों में सामर्थ्य न हो, वहां समास आदि पदविधि नहींहोती। जैसे-चतुरस्य राज्ञः पुरुष-यहां 'राज्ञः' और 'पुरुषः' का समास नहीं होता, क्योंकि 'राज्ञः' का संबंध 'चतुरस्य' के साथ भी हे, अतः उस बाह्य पद के प्रति साकाङ्क्ष होने के कारण यहां 'राज्ञः' और 'पुरुषः' का सामर्थ्य नहीं, अतः इनका समास नहीं होता। इसीलिये कहा गया है-**सविशेषणानां व त्तिर्न व त्तस्य च विशेषणयोगो न**—सविशेषण पदों की व त्ति होने पर विशेषण का संबंध ही होता है। 'चतुरस्य राजपुरुषः' यहां राजन् का समास हो गया है, इसलिये इसके साथ 'चतुर' विशेषण का सन्बन्ध नहीं हो सकता।

सामर्थ्य का अर्थ है जिन पदों की समास आदि व त्ति होती हो, उनके अर्थों का परस्पर साकाङ्क्ष होना।

सामर्थ्य दो प्रकार का होता है—1. व्यपेक्षा और 2. एका र्थीभाव।

आकाङ्क्षा आदि के कारण पदों का जो परस्पर संबंध होता है उसे व्यपेक्षा कहते हैं, वह वाक्य में होती है। जैसे-'राज्ञः पुरुषः' यहां दोनों पदों का परस्पर संबंध है, इसलिए यहां व्यपेक्षा-रूप सामर्थ्य है।

जहां पदार्थों की एक साथ उपस्थिति होती है, प थक् प थक् नहीं, वह एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य होता है। यह पदार्थों की एक साथ उपस्थिति 'राजपुरुषः' इत्यादि व त्त (समास आदि) में ही होती है।

व त्ति किसे कहते है और कितने प्रकार की होती है? यह सब आगे इसी प्रकरण में मूल में ही बताया जाएगा।

प्राक् कडारात् समासः 2.1.3

'कडाराः कर्मधारये' 2.2.38 इत्यतः प्राक् 'समासः' इत्यधिक्रियते

व्याख्याः 'कडाराः कर्मधारये' द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद के इस अन्तिम सूत्र से पूर्व सूत्र तक 'समास' इसका अधिकार है अर्थात् उस सूत्र से पूर्व तक सब सूत्र समास का विधान करते हैं।

सह सुपा 2.1.4

सुप् सुपा सह वा समस्यते समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक्। परार्था भिधानं व त्तिः। कृत्-तद्धित-समासैकशेष-सना द्यन्तधातु-रूपाः पु च व त्तयः। व त्यर्था वोधक' वाक्यं विग्रहः। स च लौकिको -लौकिकश्चेति द्विधा-तत्र 'पूर्वं भूतः' इति लौकिकः। :पूर्व अम् भूत सु' इत्यलौकिकः। भूतपूर्वः। 'भूत-पूर्व चरड्' इति निर्देशात् पूर्व-निपातः। (वा) इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च। वागर्थौ इव-वागर्थाविव।

इति केवलसमासः प्रथमः।

व्याख्याः सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है।

इस सूत्र में :सुब् आमन्त्रिते पराङ्वत् स्वरे 2.2.2' इस पूर्व सूत्र से 'सुप्' इस प्रथमान्त पद की अनुव त्ति आती है। त तीयान्त 'सुपा' पद है। प्रत्यय होने के कारण 'प्रत्ययग्रहणे तदन्त'ग्रहणम्' इस परिभाषा के बल से तदन्त का ग्रहण होता है।

समासत्वादिति—समास होने से प्रातिपदिक संज्ञा होगी। इससे 'सुपो धातु-प्रातिपदिकयोः 2.4.71' सूत्र से लोप हुआ।

परार्थेति—परार्थ के बोधन कराने को व त्ति कहते हैं।

प्रत्यय या अन्य पद के अर्थ को साथ लेकर जो विशिष्ट अर्थ प्रतीत होता है, उसे परार्थ कहते हैं। व त्ति से उसी परार्थ का बोध होता है

कृत्तद्धितेति—कृत्, तद्धित, समास, एकशेष और सनाद्यन्त धातु-ये पांच व त्तियां होती हैं।

कृत् प्रत्यय कृन्दत प्रकरण में बताए गए हैं। तद्धित प्रकरण में आगे बताये गए हैं।

समास और एकशेष—यहां बताये जा रहे हैं। सनाद्यन्त धातुरूप व त्ति नामधातु प्रकरण में आती है, सन् क्यच् आदि प्रत्यय इस व त्ति के कार्य हैं।

व त्त्यर्थेति—व त्ति के अर्थ का बोध करानेवाले वाक्य को विग्रह कहते हैं। जैसे-**राजपुरुषः** यह समास व त्ति है, इसका अर्थ 'राज्ञःपुरुषः' इस वाक्य के द्वारा प्रतीत होता है-इसलिये यह विग्रह है। इसी प्रकार 'पुत्रीयति' इस सनाद्यन्त धातुरूप व हत्ति का विग्रह 'पुत्रमानम् इच्छति' यह वाक्य है।

स चेति—वह विग्रह दो प्रकार का होता है-1. लौकिक और 2. अलौकिक।

लौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग किया जाता है। जैसे-'राजपुरुषः' का 'राज्ञःपुरुषः'। इसका लोक में प्रयोग होता है।

अलौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता। जैसे-'राजपुरुषः' का 'राजन् ङस् पुरुष सु'। इसका लोक में प्रयोग नहीं होता, इसीलिये इसे अलौकिक कहा जाता है, इसकी तो व्याकरण शास्त्र की प्रक्रिया के लिये कल्पना की गई है।

'भूतपूर्वः' इस प्रकृत समास व त्ति के लौकिक और अलौकिक विग्रह यहां मूल में दिये गये हैं। 'पूर्वभूतः, पहले हुआ' यह प्रयोग के योग्य होने से लौकिक विग्रह है और 'पूर्व अम् भूत सु' यह प्रयोग के योग्य न होने से अलौकिक है।

भूतपूर्वः (जो पहले हुआ)-यहां 'पूर्व भूतः' इस लौकिक और 'पूर्व सम् भूत सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सह असुपा' इस प्रकृत सूत्र से सुबन्त 'पूर्वम्' का 'भूतः' इस सुबन्त के साथ समास हुआ। तब समास होने के कारण 'कृत् तद्धित-समासाश्च 1.2.46' इस सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा हुई और -सुपो धातुप्रातिपदिकयो : 2.4.71' से सुप् 'अम' और 'सु' का लोप हुआ। तब 'पूर्वभूत' यह प्रातिपदिक बना। 'भूतपूर्वे चरेट' इस पाणिनि सूत्र के प्रमाण से 'भूत' शब्द को पहले रखा गया, यद्यपि उसे 'पूर्वं भूतः' इस विग्रह में बताये गये क्रम के अनुसार 'पूर्व' शब्द के बाद आना चाहिये था। इस प्रकार सिद्ध हुए 'भूतपूर्व' प्रातिपदिक के प्रथमा के एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।

(वा) इवेनेति—'इव' इस अव्यय पद के साथ सुबन्त का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता।

समास के तीन फल हैं-1. एक पद बन जाना, 2. विभक्ति का लोप, 3. एक पद बन जाने से एक स्वर होना।

इव के समास में विभक्ति के लोप का निषेध कर दिया गया है, इसलिये संभवतः एक पद भी समझा जाए। परन्तु एक स्वर होना फल फिर भी है। इसी फल के लिये यहां समास का विधान किया गया है।

वागर्थाविव—यहां 'वागर्थौ' का समास 'इव' के साथ हुआ है तथा विभक्ति का लोप नहीं हुआ।

केवल समास समाप्त

अथ अव्ययी भावः

अव्ययीभावः 2.1.5

अधिकारो यं प्राक् तत्पुरुषात्

व्याख्याः 'अव्ययीभाव' इस सूत्र का 'तत्पुरुषः 2.1.22' इस आगे आने वाले सूत्र से पूर्व के सूत्रों तक अधिकार है अर्थात् तत्पुरुष के पूर्व जितने सूत्र समास करते हैं, उन सब में यह सूत्र पहुंचता है और उन सूत्रों के द्वारा किये हुए समासों की अव्ययीभाव संज्ञा करता है।

अव्ययं विभक्ति-समीप-सम द्धि-व्य द्ध्यर्था भावा त्यया-संप्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्-यथा नुपूर्व्य-यौगपद्य-साद श्य-संपत्ति-साकल्या न्त-वचनेषु 2.1.6

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते। प्रायेणा विग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणा स्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ-'हरि ङि अधि' इति स्थिते।

व्याख्याः **अव्ययीभाव इति**—1. विभक्ति, 2. समीप, 3. सम द्धि, 4. सम द्धि का नाश, 5. अभाव, 6. नाश, 7. अनुचित, 8. शब्द की अभिव्यक्ति, 9. पश्चात्, 10. यथा, 11. क्रमशः, 12. एक साथ, 13. समानता, 14. संपत्ति, 15. सम्पूर्णता और अन्त तक-इन 16 सोलह अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है।

प्रायेणेति—प्रायः जिस समास का विग्रह न हो उसे नित्य समास कहते हैं अथवा प्रायः जिसका अपने पदों से विग्रह नहीं होता अर्थात् जिन शब्दों का समास हुआ हो उन शब्दों के द्वारा जिसका विग्रह न हो, वह नित्यसमास होता है।

यहां विग्रह से तात्पर्य लौकिक विग्रह का है, अलौकिक विग्रह तो 'सभी समासों का होता है। लौकिक विग्रह में समास के सभी अवयव आयें तो भी नित्वसमास होता है।

यदि समास का कोई अवयव विग्रह में आ जाए तो भी नित्य समास होता है। जैसे-'अधिहरि' यह समस्त पद है। 'अव्ययं विभक्ति-' सूत्र से यहां विभक्त्र्थ में समास हुआ है। यह नित्यसमास है। इसका लौकिक विग्रह

है-हरौ। यहां समास का अवयव 'हरि' शब्द विग्रह में आ गया है, पर अधि शब्द नहीं आया, इसलिये समासके अवयव सभी पदों के विग्रह में न आने के कारण यह नित्य समास है। अधिहरि शब्द नित्य समस्त रूप में ही प्रयुक्त हो सकता है। अधि शब्द वाक्य में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकता।

अधिहरि (हरि में)-यहां लौकिक विग्रह है-'हरौ' और अलौकिक विग्रह है-'हरि ङि अधि'। इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ है। 'अधि' अव्यय सप्तमी विभक्ति के अर्थ अधिकरण का वाचक वर्तमान है। 'हरि ङि' यह सुबन्त है। इसके साथ 'अधि' अव्यय का प्रकृत सूत्र से समास होता है।

समास होने पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किस शब्द को पहले रखा जाए। इस प्रश्न का समाधान करने के लिए अग्रिम सूत्र है।

प्रथमा-निर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 1.2.43

समास-शास्त्रे प्रथमा-निर्दिष्टम् उपसर्जनसंज्ञं स्यात्।

व्याख्या: **प्रथमेति**—समास शास्त्र में अर्थात् समास करने वाले सूत्र में जो पद प्रथमान्त पढ़ा गया हो, उस के द्वारा विग्रह वाक्य में स्थित जिस पद का बोध हो वह उपसर्जन-संज्ञक हो।

जैसे प्रकृत में समासशास्त्र है पूर्वोक्ति 'अव्ययं विभक्ति-' इत्यादि सूत्र, इसमें 'अव्ययम्' पद प्रथमान्त आया है। इसके द्वारा 'हरि ङि' इस अलौकिक विग्रह वाक्य में स्थित 'अधि' पद का ज्ञान होता है, अतः इसकी उपसर्जन संज्ञा हुई।

उपसर्जनं पूर्वम् 2.2.30

समासे उपर्सनं प्राक् प्रयोज्यम्। इति 'अधेः' प्राक् प्रयोगः सुपो लुक्, एकदेश-विकृतस्या नन्यत्वात् प्रातिपदिक-संज्ञाया स्वाद्युत्पत्तिः, अव्ययीभावश्च' इत्यव्ययत्वात् सुपो लुक-अधिहरि।

व्याख्या: **उपसर्जनमिति**—समास में उपसर्जन का पहले प्रयोग हो।

इस सूत्र के द्वारा उपर्युक्त उदाहण में उपसर्जन संज्ञक 'अधि' पद का पूर्व निपात अर्थात् पहले प्रयोग हुआ।

पूर्व सूत्र से जो उपर्सन संज्ञा होती है, उसका फल है पूर्व-निपात अर्थात् पद का पहले रखा जाना।

पहले यह देखना चाहिये कि किस सूत्र से समास होता है उस सूत्र में प्रथमान्त पद कौन है। इसके बाद अलौकिक विग्रह में ढूंढिये कि समासशास्त्रस्थ प्रथमान्त पद से किसका ग्रहण होता है, बस उस पद को पहले रखिए।

हिन्दी में समासशास्त्रों का अर्थ करते समय प्रायः प्रथमान्त का अर्थ सम्बन्धकारक जोड़कर किया जाता है और त तीयान्त का 'साथ' शब्द जोड़कर। जैसे-प्रकृत 'अव्ययं विभक्ति'-सूत्र में प्रथमान्त पद 'अव्यव' है उसका अर्थ किया जाता है-'अव्यय पद का' और 'सुपा' की अनुव त्ति आती है, वह पद त तीयान्त है, उसका अर्थ किया जाता है 'सुबन्त के साथ'। हिन्दी में अर्थ करते हुए जिस शब्द के साथ सम्बन्ध-कारक का 'का- चिह्न जोड़ा जाता है, उस शब्द से अलौकिक विग्रह वाक्य के जिस पद का ग्रहण होना हो, उसको समास में पहले रखना चाहिए।

सुप इति—सुप् का लुक् हुआ अर्थात् 'अधि हरि ङि' यहां अधि का पूर्वनिपात होने पर प्रातिपदिक के अवयव सुप् ङि का 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः 2.4.71' से लोप हो गया। तब 'अधिहरि' यह शब्द बना।

एकदेशेति—एकदेश जिसका विकृत होता है, वह अन्य नहीं होता अर्थात् एकदेशविकृत न्याय से 'अधिहरि' की प्रातिपदिक संज्ञा है ही। कहने का अभिप्राय यह है कि सुप् का लोप होने पर प्रातिपदिक विकृत हो गया। परन्तु एकदेशविकृत न्याय से उसे प्रातिपदिक ही मानकर सु आदि किये गये।

अव्वयीभावश्चेति—'अव्ययीभावश्च 1.1.41।।' इस सूत्र से 'अधिहरि' इस समस्त पद का अव्ययीभाव होने के कारण अव्यय संज्ञा हुई और इसीलिए पुनः समस्त पद से आये हुए सुप् का 'अव्ययादाप्सुपः 2.4.28।।' से लोप हुआ। इस प्रकार 'अधिहरि' रूप सिद्ध हुआ।

अव्ययीभावश्च 2.4.18

अयं नपुंसकं स्यात्। गाः पातीति गोपास्तस्मिन्निति-अधिगोपम्।

व्याख्याः **अव्ययीभावश्चेति**—अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्ग होता है।

यहां इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि 'अव्ययीभावश्च' इस प्रकार एक आकार होने पर भी अव्ययीभाव समास की अव्यय संज्ञा और नपुंसकलिङ्ग विधान करनेवाले दो भिन्न सूत्र हैं। अव्यय संज्ञा करनेवाला सूत्र (1.1.41) पहले अध्याय के पहले पद का इकतालीसवां सूत्र है और नपुंसक विधान करनेवाला (2.4.18) दूसरे अध्याय के चतुर्थ पाद का अठारहवां।

अधिगोपम् (ग्वाले में)-'गोपि' इस लौकिक विग्रह और 'गोपा ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में 'अव्ययं विभक्ति-' इत्यादि सूत्र से विभक्ति सप्तमी के अर्थ में वर्तमान अधि-अव्ययम् प्रथमान्त पद के द्वारा बोध्य होने से 'अधि' की 'प्रथमा-निर्दिष्टं समास उपसर्जनम 1.2.43' इस सूत्र के द्वारा उपसर्जन संज्ञा होने के कारण पूर्व प्रयोग हुआ। फिर प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् ङि का लोप होकर 'अधिगोपा' शब्द बना। अव्ययीभाव होने से प्रकृत सूत्र से वह नपुंसकलिङ्ग हुआ। तब 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपिकस्य' से ह्रस्व होने पर 'अधिगोप' शब्द बना और प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

915 ना व्ययीभावादिति—अदन्त अव्ययीभाव से पर सुप् का लोप न हो, उसके स्थान में अम् आदेश हो, प चमी विभक्ति को छोड़कर।

त तीया-सप्तम्योर्बहुलम् 2.4.84

अदन्ताद् अव्ययीभावात् त तीया-सप्तम्योबर्हुलम् 'अम्' भावः स्यात्। उप-कृष्णम्, उप-कृष्णेन। मद्राणां सम द्धिः, सु-मद्रम्। यवनानां व्य द्धिः-दुर्यवनम्। मक्षिकाणाम् अभावः-निर्मक्षिकम्। हिमस्या त्ययः-अति-हिमम्। निद्रा संप्रति न युज्यत इति-अति-निद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाशः-इति-हरि। विष्णोःपश्चाद्-अनुविष्णु। योग्यता-वीप्सा-पदार्था नतिव त्ति- साद श्यानि यथार्थः-रूपस्य योग्यमनुरूपम्, अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम, शक्तिमनतिक्रम्य-यथाशक्ति।

व्याख्याः **त तीयेति**—अदेन्त अव्ययीभाव से पर त तीया और सप्तमी को बहुलता से 'अम्' आदेश हो।

इस प्रकार अदन्त अव्ययीभाव शब्द के प चमी में सदा और त तीया तथा सप्तमी में विकल्प से रूप बनते हैं, शेष[1] विभक्तियों को 'अम्' आदेश होने से विभक्त्यन्त रूप नहीं बनते।

2 **उपकृष्णम्, उपकृष्णेन**—'कृष्णस्य समीपम्' इस लौकिक विग्रह तथा 'कृष्ण ङस् इस अलौकिक विग्रह में समीप अर्थ में वर्तमान उप अव्यय का 'कृष्ण ङस्' इस सुबन्त के साथ 'अव्ययं विभक्ति-' से समास हुआ। 'प्रथमानिर्दिष्टम-'से उप का पूर्व निपात होने पर सुप् का लोप हुआ। तब 'उपकृष्ण' शब्द बना। त तीय आने पर प्रकृत सूत्र से उसे 'अम्' आदेश विकल्प से हुआ। इस प्रकार उपर्युक्त दो रूप बने।

अव्ययं विभक्ति—' सूत्र के उदाहरण क्रमशः दिये जा रहे हैं। 'अधिहरि' और 'अधिगोपम' विभक्त्यर्थ के और 'उपकृष्णम्' समीप अर्थ का उदाहरण है। आगे क्रमशः अन्य उदाहरण दिये जा रहे हैं।

3 **सम द्धि**—मद्राणां सम द्धि। सु मद्रम् (मद्रदेश के लोगों की सम द्धि)-यहां सम द्धि अर्थ में वर्तमान सु अव्यय का 'मद्राणाम्' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

4 **व्य द्धि**—यवनानां व्य द्धिः दुर्यवनम् (यवनों की ऋद्धि का अभाव)-यहां व्य द्धि अर्थ में वर्तमान दुर अव्यय का 'यवनानाम्' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

5 **अभाव**—मक्षिकाणाम् अभावो **निर्मक्षिकम्** (मक्खियों का अभाव, सुनसान)-यहां अभाव अर्थ में वर्तमान निर् अव्यय का 'मक्षिकाणाम्' सुबन्त के साथ समास हुआ। 'निर्मक्षिका' बन जाने पर नपुंसक होने के कारण इसे ह्रस्व हो जाता

---

1. इस नियक को ध्यान में रख्पने से 'प्रत्येकस्य इस प्रकार अशुद्ध प्रयोग से बचा जा सकता है। 'प्रत्येक' अव्ययीभाव है-इससे परे विभक्ति को 'अम्' आदेश होकर षष्ठी में भी 'प्रत्येकम्' ही रूप बनेगा।

है। इस प्रकार 'निर्मक्षिक' अकारान्त शब्द बनता है। फिर सुप् को अम् आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

'निर्मक्षिकम्' शब्द का प्रयोग 'सुनसान-जहां कोई न हो' अर्थ में होता है।

6 **अत्यय** (विनाश)-हिमस्यात्ययोः ति-हिमम् (बर्फ का नाश)-यहां नाश अर्थ में वर्तमान अति अव्यय का समास हुआ।

7 **अ-संप्रति**—(अनौचित्य) निद्रा संप्रति न युज्यते इति-अति-निद्रम् (इस समय निद्रा उचित नहीं)-यहां असंप्रति अर्थ में वर्तमान 'अति' अव्यय का 'निद्रा' इस सुबन्त के साथ समास होने पर हस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से हस्व होकर पूर्वोक्त प्रकार से रूप सिद्ध हुआ।

8 **शब्द-प्रादुर्भाव**—हरिशब्दस्य प्रकाश इति-हरि (हरि शब्द का प्रादुर्भाव) यहां प्रकाश अर्थ में वर्तमान 'इति' अव्यय का 'हरेः' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

9 **पश्चात्-विष्णोः** पश्चाद् अनु-विष्णु (विष्णु के पीछे)-यहां पश्चात् अर्थ में वर्तमान पश्चाद्' अव्यय का 'विष्णो' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

10 **यथा** शब्द के चार अर्थ हैं-1. योग्यता, 2. वीप्सा-बार बार होना, 3. पदार्थ का अतिक्रमण न होना, 4. साद श्य इन चारों अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है। **क्रमशः** उदाहरण ये हैं-1. **योग्यता—रूपस्य योग्यम्**-अनुरूपम् (रूप के योग्य)-यहां यथा का योग्यता अर्थ में वर्तमान 'अनु' अव्यय का समास हुआ 2. **वीप्सा**—अर्थमर्थ प्रति **प्रत्यर्थम्** (प्रति अर्थ)-यहां यथा का वीप्सा में वर्तमान 'प्रति' अव्यय का सुबन्त 'अर्थ' के साथ समास हुआ। 3 **पदार्था निव त्ति**—शक्तिमनतिक्रम्य **यथाशक्ति** [शक्ति का अतिक्रमण न करके अर्थात् जितनी शक्ति है]—यहां पदार्था नतिव त्ति अर्थ में वर्तमान 'यथा' अव्यय का समास हुआ।

अव्ययीभावे चा काले 6.3.81

सहस्य सः स्याद् अव्ययीभावे, न तु काले। हरेः साद श्यम्-सहरि। ज्येष्ठस्या नुपूर्व्येण-इति-अनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत्-सचकम्। सद शः सख्या-स-सखि। क्षत्त्राणां संपत्तिः। त णमप्यपरित्यज्य-सत णम् अत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते-साग्नि।

व्याख्याः **अव्ययीभावे इति**—सह को 'स' आदेश हो अव्ययीभाव समास में, परन्तु काल अर्थ में न हो।

4 **साद श्य**—हरेः साद श्यम् सहरि (हरे की समानता) यहां यथा के अर्थ साद श्य मे वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'हरेः' के साथ समास हुआ। तब 'सह' को प्रकृत रूप से 'स' आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

11 **आनुपूर्व्य**—ज्येष्ठस्या नुपूर्व्येण इति **अनुज्येष्ठम्** (ज्येष्ठ के क्रम से)-यहीं आनुपूर्व्य अर्थ में वर्तमान 'अनु' अव्यय का 'ज्येष्ठस्य' इस सुबन्त के साथ समास हुआ।

12 **योगपद्य** (एक साथ।) चक्रेण युगपत् सचक्रम (चक्र के एकदम साथ)-यहां यौगपद्य अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का समास हुआ और सह को 'स' आदेश।

ससखि—'सद शः संख्या' इस लौकिक विग्रह में तथा 'सखि टा 'सह' इस अलौकिक विग्रह में साद श्य अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'संख्या' के साथ समास होने पर सुप् का लुक् तथा प्रकृत सूत्र से सह को स आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

14 **संपत्ति**—क्षत्राणां संपत्तिः **सक्षत्त्रम्** (क्षत्रियों की संपत्ति)-यहां संपत्ति अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का 'क्षत्राणाम्' सुबन्त के साथ समास और 'सह' को 'स' आदेश हुआ।

15—**साकल्य-सम्पूर्णता।** त णमप्यपरित्यज्य सत णम् अत्ति। (त ण को भी न छोड़कर अर्थात् सब खा जाता है)-यहां साकल्य अर्थ में वर्तमान सह अव्यय का 'त णम्' सुबन्त के साथ समास हुआ और 'सह' को 'स' आदेश।

16 **अन्त**—अग्निग्रन्थ-पर्यन्तम् साग्नि (अग्नि-चयन ग्रन्थ तक पढ़ता है)-यहां अन्त अर्थ में वर्तमान 'सह' अव्यय का सुबन्त 'अग्निना' के साथ समास हुआ और 'सह' को 'स' आदेश। यहां अग्नि शब्द अग्नि का चयन जिस ग्रन्थ में आया है उसके अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

इस प्रकार 'अव्ययं विभक्ति-' सूत्र के सारे उदाहरण आ गये। समास होने पर प्रातिपादिक संज्ञा, अव्यय का पूर्व प्रयोग, सुप् का लोप आदि कार्य सब में होते हैं।

नदीभिश्च 2.1.20

नदीभिः सह संख्या समस्यते। (वा) समाहारे चा यमिष्यते। प च-गङ्गम्। द्वियमुनम्।

व्याख्याः **नदीभिश्चेति**—नदी-विशेष के वाचक के साथ संख्यावाचक का समास होता है।

(वा) **समाहार**—यह समाहार में होता है अर्थात् समस्त पद का अर्थ समाहार होता है।

प चम्-गङ्गम (पांच गङ्गाओं का समाहार)-यहां प चन् संख्यावाचक का नदी-विशेषवाचक गङ्गा शब्द के साथ प्रकृत सूत्र से समास हुआ। तब प्रथमानिर्दिष्ट होने से संख्यावाचक का पूर्व निपात होने पर सुप् का लोप हुआ। 'नकार' का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इस सूत्र से लोप हुआ और अव्ययीभाव होने के कारण नपुंसक होने से ह्रस्व होकर 'प चगङ्ग शब्द बना। सुप् का अम् आदेश होने पर रूप बना।

इसी प्रकार-द्वियमुनम् (द्वयो यमुनयोः समाहारः-दो यमुनाओं का समाहार) की भी सिद्धि होती है।

तद्धिताः 4.1.76

आ प चमसमाप्तेरधिकारो यम्।

व्याख्याः **तद्धिता इति**—पांचवें अध्याय की समाप्ति तक तद्धित का अधिकार है अर्थात् इस सूत्र से आगे पांचवें अध्याय तक जितने सूत्र हैं, उनके द्वारा जिन प्रत्ययों का विधान होता है उन सभी प्रत्ययों को तद्धित कहा जाता है।

तद्धित संज्ञा का फल तदन्त शब्दों की 'कृत्-तद्धित-समासाश्च 1.2.46' सूत्र से प्रातिपादिक संज्ञा होना है।

अव्ययीभावे शरत् प्रभ तिभ्यः 5.4.107

शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तो व्ययीभावे। शरदः समीपम् उपशरदम्। प्रतिविपाशम्। (ग.सू.) जराया जरस्। उपजरसमित्यादि।

व्याख्याः **अव्ययीभावे इति**—शरद् आदि शब्दों से टच् प्रत्यय समासान्त हो अव्ययीभाव समास में।

टच् के टकार और चकार इत् संज्ञक हैं। केवल अकार बच रहता है। टच् की तद्धित संज्ञा पूर्व सूत्र से होती है। तब प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सु आदि विभक्ति की उत्पत्ति होती है।

उपशरदम् (शरदः समीपम् शरद् के समीप)-यहां समीप अर्थ में वर्तमान 'उप' अव्यय का 'शरदः' इस सुबन्त के साथ 'अव्ययं' विभक्ति-' इस सूत्र से समास हुआ। प्रकृत सूत्र से तद्धित संज्ञक समासान्त प्रत्यय टच् होने पर 'उपशरद' अकारान्त शब्द बना। फिर सुप् को अम् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

प्रतिविपाशम् (विपाशाया अभिमुखम्-विपाशा व्यास नदी की ओर)-यहां 'लक्षणेनाभि-प्रती आभिमुख्ये 2.1.14'' सूत्र से आभिमुख्य-ओर-अर्थ में प्रति निपात का सुबन्त विपाशः के साथ समास हुआ। प्रकृत सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय होकर पूर्वोक्त प्रकार से रूप सिद्ध हुआ।

(ग. सू.) **जराया इति**—समास में जरा शब्द की जरस् आदेश और समासान्त टच् प्रत्यय हो।

यह शरदादि गण का सूत्र है। इसके द्वारा टच् समासान्त के साथ जरा शब्द के स्थान में जरस् आदेश का भी विधान किया गया है।

उपजरसम् (जरायाः समीपम्, बुढ़ापे के निकट)-यहां समीप अर्थ में वर्तमान अव्यय 'उप' का 'जरायाः' सुबन्त के साथ समास होने पर प्रकृत गणसूत्र से जरा शब्द को जरस् आदेश और समासान्त टच् प्रत्यय होने पर अकारान्त 'उपजरस' शब्द बना। फिर सुप् और उसको अम् आदेश होकर रूप बना।

अनश्च 5.4.10

अन्नन्ताद् अव्ययीभावात् टच् स्यात्।

व्याख्याः **अनश्चेति**—अन्नन्त अव्ययीभाव से समासान्त टच् प्रत्यय हो।

नस्तद्धिते 6.4.144

ना न्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्।

व्याख्याः **नस्तद्धिते इति**—नान्त भसंज्ञक टि का लोप हो तद्धित प्रत्यय परे रहते।

उपराजम् (राजा के समीप)-'राज्ञः समीपम्' यह लौकिक और 'राजन् ङस् उप' यह अलौकिक विग्रह है। यहां 'अव्ययं विभक्ति-' से समीप अर्थ में वर्तमान 'उप' अव्यय का सुबन्त 'राज्ञः' के साथ समास हुआ। समासशास्त्र में स्थित प्रथमान्त 'अव्ययम्' पद से योग्य होने के कारण उपसर्जन संज्ञा हाने पर 'उप' का पूर्वनिपात हुआ। फिर सुप् का लोप होने पर अन्नन्त अव्ययीभाव 'उप राजन्' से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ और टि अन् का 'नस्तद्धिते' से लोप होकर 'उपराज' अकारान्त शब्द बना। सुप् को अम् होने पर रूप सिद्ध हुआ।

अध्यात्मम् (आत्मा के विषय में)-'आत्मनि' इस लौकिक और 'आत्मन् ङि अधि' इस अलौकिक विग्रह में विभक्ति सप्तमी के अर्थ में वर्तमान 'अधि' का 'आत्मनि' इस सुबन्त के साथ समास हुआ। फिर अधि का पूर्वनिपात सुप् का लुक् होने पर 'अनश्च' से समासान्त टच् प्रत्यय और 'नस्तद्धिते' से टि का लोप हुआ। तब 'अध्यात्म' इस अकारान्त प्रातिपदिक से सुप् आया, उसे 'अम्' आदेश हुआ।

नपुंसकाद् अन्यतरयाम् 5.4.101

अन्नन्तं यत् क्लीबम् तदन्ताद् अव्ययीभावात् टज् वा स्यात्। उपचर्मम्, उपचर्म।

व्याख्याः **नपुंसकादिति**—अन्नन्त जो नुंसकलिङ्ग शब्द, तदन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय हो विकल्प से।

उपचर्मम्, उपचर्म (चर्म के समीप)-'चर्मणः समीपम्' इस लौकिक और 'चर्मन् ङस् उप' इस अलौकिक विग्रह में अव्यय 'उप' का सुबन्त 'चर्मणः' के साथ समास होने पर 'उप' का पूर्वनिपात और सुप् का लोप होकर उपचर्मन् यह रूप बना। यहां अन्नन्त नपुंसकलिङ्ग 'चर्मन्' है। तदन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय विकल्प से हुआ। टच् पक्ष में 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप होने पर अकारान्त शब्द बना और तब सुप् को अम् आदेश होने पर रूप सिद्ध हुआ। अभावपक्ष में नान्त ही शब्द रहेगा और उसी प्रकार रूप बनेंगे।

झयः 5.4.111

झयन्ताद् अव्ययीभावत् टच् वा स्यात्। उपसमिधम्, उपसमित्।

व्याख्याः **झय इति**—झयन्त अव्ययीभाव से टच् विकल्प से हो।

उपसमिधम्, उपसमित् (समिध के समीप)-यहां भी पूर्ववत् समास आदि होते हैं प्रकृत सूत्र से टच् प्रत्यय विकल्प से हुआ। टच् पक्ष में अकारान्त शब्द बन जाने पर सुप् को अम् आदेश होकर पहला रूप बना। अभावपक्ष में धकारान्त ही शब्द रहने से हलन्त नपंसकलिङ्ग शब्द के जैसे रूप बनते हैं, प्रथमा के एकवचन का ऊपर रूप दिया गया है।

अव्ययीभाव समाप्त

अथ तत्पुरुषसमास

तत्पुरुषः 2.1.22

अधिकारो यम् प्राग् बहुव्रीहेः।

व्याख्याः **तत्पुरुष इति**—यह अधिकार 'शेषो बहुव्रीहिः' इस सूत्र से पहले तक है अर्थात् बहुव्रीहि के पूर्व समास विधान करने वाले सूत्रों में इसका अधिकार है, उनसे जो समास होता है, वह तत्पुरुष होता है।

द्विगुश्च 2.1.23

द्विगुरपि तत्पुरुष-संज्ञक-स्यात्।

व्याख्याः **द्विगुरिति**—द्विगु भी तत्पुरुष-संज्ञक हो।

तत्पुरुष में उत्तरपद का अर्थ प्रधान रहता है, उसी का अन्वय अन्य पदार्थों में होता है, यह पहले कहा जा चुका है।

यह भी बताया जा चुका है कि तत्पुरुष समास दो पदों का होता है। उन दो पदों में पहला पद प्रथमान्त को छोड़कर अन्य-विभवत्यन्त होता है और उत्तरपद के अर्थ के प्रधान होने के कारण आगे अन्वित होने से अर्थानुसार उसमें विभक्ति रहती है। परन्तु समास करते समय उसे प्रायः प्रथमान्त रखा जाता है, प्रथमान्त से ही विग्रह किया जाता है।

जब आगे तत्पुरुष समास करनेवाले सूत्र आते हैं। वे क्रमशः द्वितीयान्त आदि पदों का समास विधान करते हैं। उनमें पहले द्वितीयान्त का समास विधान करने वाला सूत्र दिया जाता है।

द्वितीया-श्रिता तीत-पतित-गता त्यस्त-प्राप्ता पन्नैः 2.1.24

द्वितीयान्तं श्रिता दि-प्रकृतिकैः सुबन्तैः सह समस्यते वा, स च तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः—कृष्ण-श्रितम् इत्यादि।

व्याख्याः **द्वितीयेति**—द्वितीयान्त पद का श्रित, अतीत (बीता हुआ), पतित, गत, अत्यस्त (फेंका हुआ), प्राप्त और आपन्न, इन प्रातिपदिकों से बने हुए सुबन्तों के साथ विकल्प से समास होता है और उसकी तत्पुरुष संज्ञा होती है।

कृष्णश्रितः (कृष्ण के आश्रित)-'कृष्णं श्रितः' इस लौकिक विग्रह और 'कृष्ण अम् श्रित सु' इस अलौकिक विग्रह में द्वितीयान्त 'कृष्णम्' का श्रित शब्द से बने 'श्रितः' इस सुबन्त के साथ प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समासशास्त्र 'द्वितीया-' इस प्रकृत सूत्र में प्रथमान्त पद है 'द्वितीया', उससे बोध होता है विग्रह में स्थित 'कृष्णम्' पद का उसकी 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 1.2.43'' से उपसर्जन संज्ञा होती है और 'उपसर्जनं पूर्वम् 2.3.30' से उसका पूर्व प्रयोग। फिर 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः 2.4.71' से सुप् 'अम्' और 'सु' का लोप होने पर 'कृष्णश्रित' यह समस्त प्रातिपदिक बना। इससे सु आदि की उत्पत्ति हुई। प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार-आशाम् अतीतः-**आशा तीतः** (जो आशा को पार कर गया हो अर्थात् आशा से अधिक हो) नरक पतितः-**नरक-पतितः** (नरक में पड़ा हुआ), स्वर्ग गतः-**स्वर्ग-गतः** (स्वर्ग को गया हुआ), कूपमत्यस्तः-**कूपा त्यस्तः** (कूप में फेंका हुआ), सुखं प्राप्तः-**सुख-प्राप्तः** (सुख को प्राप्त हुआ), संकटमापन्नः-**संकटा पन्नः** (संकट में पड़ा हुआ)-इत्यादि अन्य उदाहणों की भी सिद्धि होती है।

त तीया तत्कृता र्थेन गुण-वचनेन 2.1.30

त तीयान्तं त तीयान्तार्थकृतगुणवचनेना र्थेन च सह् वा प्राग्वत् शङ्कुलया खण्डः-शङ्कुला-खण्डः। धान्येनार्थः-धान्या र्थ 'तत्कृत' इति किम्—अक्ष्णा काणः।

व्याख्याः **त तीयेति**—त तीयान्त के अर्थ से किए हुए गुणवाचक शब्द का अर्थ शब्द के साथ समास होता है।

शङ्कुला-खण्डः (सरौते से किया हुआ टुकड़ा)-'शङ्कुलया खण्डः' यह लौकिक विग्रह है। यहां उत्तदपद खण्ड गुणवाचक है, यह त तीयान्तार्थ शङ्कुला से किया हुआ है। इसलिये 'शङ्कुला टा खण्ड सु' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समासशास्त्र में स्थित प्रथमान्त 'त तीया' पद से बोध्य विग्रह में स्थित शङ्कुला शब्द की उपसर्जन संज्ञा होने से पूर्वनिपात हुआ। सुप् का लोप होने पर 'शङ्कुला-खण्ड' प्रातिपदिक बना। इससे सु आदि की उत्पत्ति हुई, तब प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

धान्या-र्थः (धान्य से प्रयोजन)-यहां 'धान्येन अर्थः' यह लौकिक विग्रह है। 'धान्य टा अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में त तीयान्त का 'अर्थ' शब्द के साथ समास हुआ। और तब समास निमित्तक विभक्तिलोप आदि कार्य करने पर रूप सिद्ध हुआ।

तत्कृत इति—शङ्कुलया खण्डः' यहां पर 'कर्त करणे कृता बहुलम् 2.1.32' से समास हो जाता 'त तीयान्तार्थ कृत-त तीयान्तार्थ से किए हुए गुणवचन से इतना कहने से क्या आवश्यकता थी।

अक्ष्णा काण इति—'तत्कृत' ग्रहण करने से अर्थ होगा यदि त तीयान्त का गुणवचन से समास हो तो त तीयान्तार्थ कृत से ही हो। इस नियम से अक्ष्णा काणः यहां समास नहीं होगा, क्योंकि त तीयान्त अक्ष्णा से काणत्व नहीं हुआ अर्थात् आंख से काना नहीं हुआ बल्कि रोगादि से आंख कानी हो गई, अतः यहां समास नहीं हुआ।

कर्तृ-करणे कृता बहुलम् 2.1.32

कर्तरि करणे च त तीया कृन्दतेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातः-हरित्रातः। नखैर्भिन्नः-नखभिन्नः। (प.) कृद्ग्रहणे गति-कारकपूर्वस्या पि ग्रहणम्। नख-निर्भिन्नः।

व्याख्याः **कर्तृ-करणे इति**—कर्ता और करण में जो त तीया, तदन्त पद का कृदन्त के साथ बहुलता से समास होता है।

हरि-त्रातः(हरि से रक्षा किया हुआ)-'हरिणा त्रातः' यह लौकिक विग्रह है। 'हरि टा त्रात सु' इस अलौकिक विग्रह में त तीयान्त 'हरिणा' का उत्तरपद 'त्रातः' के साथ समास होकर रूप बना। यहां 'हरिणा' में त तीया कर्ता में हुई है।

नख-भिन्नः (नखों से फाड़ा हुआ)-'नखैर्भिन्नः' यह लौकिक विग्रह है। 'नखैः' यहां त तीया करण में है। इसलिये 'नख भिस् भिन्न सु' इस औकिक विग्रह में समास होने पर पूर्वोक्त रीति से रूप बना।

चतुर्थी तदर्था र्थ-बलि-हित-सुख-रक्षितैः 2.1.36

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्, तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् यूपाय दारु-यूपदारु। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः, तेनेह न रन्धनाय स्थाली। (वा) अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। द्विजार्थः-सूपः। द्विजार्था-यवागू। द्विजार्थम्-पयः। भूत-बलिः। गो-हितम्। गो-सुखम्। गो-रक्षितम्।

व्याख्याः **चतुर्थीति**—चतुर्थ्यन्त के अर्थ के निमित्त जो वस्तु हो, उसके वाचक पद के साथ तथा अर्थ (के लिये), बलि (उपहार), हित (कल्याण) सुख और रक्षित (रखा हुआ)-इन पदों के साथ चतुर्थ्यन्त का समास होता हैं

यूप-दारु (यज्ञ स्तम्भ के लिए लकड़ी)-'यूपाय दारु' यह लौकिक विग्रह है। यहां दारु (लकड़ी) चतुर्थ्यन्तार्थ यूप के लिये है इसलिए प्रकृत सूत्र से समास और तदनुसार अन्य कार्य होकर रूप बना।

तदर्थेनेति—सूत्र में पढ़े हुए 'तदर्थ' शब्द का अभिप्राय प्रकृतिविकृतिभाव है अर्थात् चतुर्थ्यन्त का अर्थ विकार और उत्तरपद का अर्थ प्रकृति होना चाहिये, तभी इस सूत्र से समास होगा। दारु से यूप बनता है, इसलिये दारु प्रकृति और यूप उसका विकार है, इस प्रकार इनमें प्रकृतिविकृतिभाव है। अतः यहां समास हो गया।

रन्धनाय स्थाली (रांधने-पकाने के लिये डेगची)-यहां स्थाली और रन्धन में प्रकृतिविकृतिभाव नहीं। स्थाली से रन्धन नहीं बनता। रन्धन असत्वभूत क्रिया है, द्रव्य नहीं, प्रकृतिविकृतिभाव दो द्रव्यों में होता है द्रव्य और क्रिया में नहीं, स्थाली द्रव्य है और रन्धन क्रिया। अत एव यहां समास नहीं होता।

(वा) **अर्थेनेति**—अर्थ शब्द के साथ नित्यसमास होता है और समस्त पद का लिङ्ग विशेष्य के अनुसार।

द्विजा र्थः सूपः (ब्राह्मण के लिये सूप्-दाल)-नित्य समास होने से यहां लौकिक विग्रह 'द्विजाय अयम्' इस प्रकार अस्वपद होता है। 'द्विज ङे अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ। विशेष्य 'सुप' पुंल्लिङ्ग है, अतः समस्त पद भी तदनुसार पुंल्लिङ्ग हुआ।

इसी प्रकार द्विजाय इयम्—द्विजार्थायवागूः ब्राह्मण के लिये लप्सी और द्विजाय इदम्-द्विजार्थं पयः (ब्राह्मण के लिये दूध)-इनमें प्रकृत वार्तिक से अस्वपदविग्रह नित्यसमास और विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ।

भूतेभ्यो बलिः-भूत-बलिः (भूतों के लिए उपहार), **गोभ्यो हितम्-गो-हितम्** (गौओं के लिए हितकर), **गोभ्यः सुखम्- गो-सुखम्** (गौओं को सुखकर) और **गोभ्यो रक्षितम्-गो-रक्षितम्** (गौओं के लिये रखा हुआ)-इनमें प्रकृत सूत्र से समास हुआ।

प चमी भयेन 2.1.37

चोराद् भयम्—चोरभयम्।

व्याख्याः **प चमीति**—प चम्यन्त का भयवाचक शब्द के साथ समास होता है।

चारोद्-भयम्-चोर-भयम् (चोर से भय)—यहां 'चोराद्' इस प चन्यन्त का 'भयम्' सुबन्त के साथ समास हुआ।

स्तोका न्तिक-दूरार्थ-कृष्छ्राणि क्तेन 2.1.39

व्याख्याः **स्तोकेति**—स्तोक (थोड़ा), अन्तिक (समीप) और दूर के अर्थ के वाचक और कृच्छ्र (कष्ट)-इन सुबन्तों का क्तप्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास होता है।

प चयाः स्तोका दिभ्य 6.3.2

अलुग् उत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

व्याख्याः **प चम्या इति**—स्तोक आदि शब्दों से पर प चमी विभक्ति का लुक् न हो, उत्तरपद परे रहते।

''उत्तर-पदं समास-चरमा वयवे रूढम—उत्तरपद समास के अन्तिम अवयव में रूढ़ है'' अर्थात् उत्तरपद कहने से समास का अन्तिम अवयव ही लिया जाता है।

विभक्ति के लोप के न होने पर समास का फल एक पद बन जाना और एक स्वर होना है।

स्तोकान्मुक्तः (थोड़े से मुक्त), **अन्तिकादागतः** (पास से आया हुआ), **अभ्याशादागतः** (पास से आया हुआ), **दूरादागतः** (दूर से आया हुआ) और **कृच्छ्रादागतः** (कष्ट से आया हुआ)-इनमें पूर्व सूत्र से समास हुआ और प्रकृत सूत्र से प चमी का अलुक् हुआ।

एक पद होने से स्तोकान्मुक्तस्य अपत्यं **स्तौकान्मुक्तिः**—यहां तद्धित प्रत्यय होने पर आदि अच् को व द्धि हुई। समास का अन्त उदात्त होता है और शेष अच् अनुदात्त होते हैं।

षष्ठी 2.2.8

सुबन्तेन प्रागृवत। राज-पुरुषः।

व्याख्याः **षष्ठीति**—षष्ठ्यन्त का सुबन्त के साथ समास हो।

राजपुरुषः—(राजा का आदमी, सरकारी आदमी)-'राज्ञः' इस षष्ठ्यन्त का 'पुरुषः' इस सुबन्त के साथ समास हुआ और तब समास निमित्तक कार्य सुप का लुक् आदि होकर रूप सिद्ध हुआ। 'राजपुरुषः' इस समस्त पद का लौकिक विग्रह 'राज्ञः पुरुषः' और अलौकिक विग्रह 'राजन् ङस् पुरुष सु' है।

पूर्वा परा धरोत्तरम् एकदेशिनैका धिकरणे 2.2.1

अवयविना सह पूर्वा दयः समस्यन्ते, एकत्वसंख्या विशिष्टश्चेद् अवयवी। षष्ठीसमासा पवादः। पूर्वं कायस्य-पूर्व-कायः। अपर-कायः। एका धिकरणे किम्-पूर्वश्छात्राणाम्।

व्याख्याः **पूर्वापरेति**—पूर्व (आगे का), अपर (पीछे का), अधर (नीचे का) और उत्तर (ऊपर)-इन अवयव-वाचक शब्दों का अवयवीवाचक शब्द के साथ समास होता है, यदि अवयवी एकत्व-संख्या-युक्त हो अर्थात् एकवचनान्त हों

एकदेश अवयव को कहते हैं और एकदेशी अवयवी को। इसलिए सूत्रस्य एकदेशिना-पद का अर्थ व त्ति में 'अवयविना' किया गया है। अधिकरण अर्थ को कहते हैं, इसलिये सूत्रस्थ 'एका धिकरण' पद का अर्थ व त्ति में किया गया है, एकत्वसंख्या-विशिष्ट अर्थात् एकत्वसंख्या जब अर्थ हो।

षष्ठीसमासेति—अवयवी का अवयव पूर्व आदि के साथ इस सूत्र से समास विधान षष्ठीसमास का बाधक है। यदि षष्ठी समास हो तो षष्ठ्यन्त का पूर्व प्रयोग हो जाएगा। इस एकदेशिसमास के करने पर समासशास्त्र में प्रथमान्त पद पूर्व आदि अवयव-वाचक शब्द हैं, उनसे बोध्य पद पूर्व आदि हैं उनका पूर्व प्रयोग होता है। पूर्व प्रयोग के लिये ही यह एकदेशिसमास किया गया है।

पूर्व-कायः (शरीर का अगला भाग)-'पूर्वं कायस्य' यह लौकिक विग्रह है। 'पूर्व अम् काय ङस्' इस अलौकिक विग्रह मे प्रकृत सूत्र से समास हुआ क्योंकि काय अवयवी है वह एकवचनान्त है, और 'पूर्व' शब्द अवयव-वाचक है। समासशास्त्रस्थ प्रथमान्त पद बोध्य होने के कारण पूर्व शब्द का पूर्वनिपात हुआ।

इसी प्रकार-अपरं कायस्य-**अपरकायः** (शरीर का पिछला भाग)-इसमें भी समास होता है।

एकाधिकरणे इति—अवयवी एकत्व-संख्याविशिष्ट अर्थात् एकवचनान्त हो, ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि **पूर्वश्छात्राणाम्**—यहां समास न हो। वहां अवयवी 'छात्राणाम्' बहुत्वसंख्याविशिष्ट है, एकत्वसंख्याविशिष्ट नहीं, इसलिये समास नहीं हुआ।

यहां तत्पुरुष होने पर भी पूर्वपद का अर्थ प्रधान है, उसी का अन्य पदार्थों के साथ अन्वय होता है। इसीलिये समासप्रकरण के प्रारम्भ में दिये गये तत्पुरुष के लक्षण में प्रायः पद रखा गया है ताकि उत्तरपद के अर्थ के प्रधान न होने पर भी तत्पुरुष के अधिकार के अन्तर्गत होने से तत्पुरुष संज्ञा हो।

अर्धं नपुंसकम् 2.2.2

समांशवाची-अर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्याः-अर्ध-पिप्पली।

व्याख्याः **अर्धमिति**—बराबर आधे भाग का वाचक जो नित्य नपुंसक अर्धशब्द है, उसका सुबन्त के साथ समास होता है।

यह भी पूर्व सूत्र के समान षष्ठीसमास का बाधक है। 'अर्थ' शब्द का पूर्वनिपात इस सूत्र का फल है। षष्ठीसमास होने पर पिप्पली शब्द का प्रयोग पहले होता।

अर्धपिप्पली (आधी पिपली)—'अर्ध' पिप्पल्याः' इस लौकिक तथा 'अर्ध' अम् पिप्पली ङस्' इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। समास शास्त्रस्थित प्रथमान्त 'अर्धम्' पद के द्वारा बोध्य विग्रह में स्थित अर्ध शब्द का पूर्वनिपात हुआ। तब सुब्लुक् आदि कार्य होने पर रूप सिद्ध हुआ।

यहां भी पूर्वपद का अर्थ प्रधान है।

सप्तमी शौण्डैः 2.1.40

सप्तम्यन्तं शौण्डा दिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्डः-अक्षशौण्डः। इत्यादि।

'द्वितीया'-'त तीया' इत्यादियोगविभागाद् अन्यत्रा पित ती या दि-विभक्तीनां प्रयोगावशात् समासो ज्ञेयः।

व्याख्याः **सप्तमीति**—सप्तम्यन्त पद का शौण्ड आदि शब्दों के साथ समास होता है।

अक्ष-शौण्डः (पासे खेलने में प्रवीण)-'अक्षेषु शौण्डः' इस लौकिक और 'अक्ष सुप् शौण्ड सु' इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ। सप्तम्यन्त का पूर्वनिपात हुआ। तब सुब्-लुक् आदि कार्य होने पर रूप सिद्ध हुआ।

द्वितीया-त तीयेति—द्वितीयाः, त तीया आदि का योगविभाग करने से अन्यत्र भी द्वितीयादि विभक्तियों का प्रयोगवश समास समझना चाहियें कहने का तात्पर्य यह है कि सूत्रों के द्वारा द्वितीयान्त आदि का पतित आदि पदों के साथ समासविधान किया गया है। परन्तु पतित आदि से भिन्न पदों के साथ भी समास मिलता है, उनकी सिद्धि के लिये 'द्वितीया' आदि को प थक् योग-सूत्र बना लिया जाएगा। जिसका अर्थ सामान्य रूप से होगा 'द्वितीयान्त का अन्य समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है' इसमें पतित आदि का संबंध नहीं रहेगा। अतः इस योगविभाग से पतित आदि से भिन्न पदों के साथ समास सिद्ध हो जाएगा।

यहां तक विभक्त्यन्तों का समास हुआ। इन समासों को व्यधिकरण तत्पुरुष कहते हैं, क्योंकि इनमें पूर्वपद और उत्तरपद का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है।

दिक्संख्ये संज्ञायाम् 2.1.50

पूर्वेषुकाशमी। सप्तर्षयः। 'संज्ञायाम् एव'इति नियमा र्थं' सूत्रम्, तेनेह न-उत्तरा व क्षाः, प च ब्राह्मणाः।।

व्याख्याः **दिक्संख्ये इति**—दिशावाचक और संख्यावाचक सुबन्तों का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है संज्ञा में।

पूर्वेषुकामशमी—यह प्राचीन समय के गांव का नाम है। इसका 'पूर्वः इषुकामशमी' यह लौकिक विग्रह है।

सप्तर्षयः—भी सात ऋषियों-वशिष्ट आदि की संज्ञा है। यहां संख्यावाचक का प्रकृत सूत्र से समास होता है। 'सप्त च ते ऋषयः' यह लौकिक विग्रह है।

संज्ञायामेवति—'दिग्वाचक और संख्यावाचक सुबन्तों का समानाधिकरण सुबन्तों के साथ संज्ञा में ही समास होता

है’ इस प्रकार नियमार्थ यह सूत्र है। अभिप्राय यह है कि -विशेषणं विशेष्येण बहुलम् 2.1.57’ इस सूत्र से प्राप्त समास का यह सूत्र नियम करता है कि यदि विशेषण दिग्वाचक और संख्यावाचक हो तो समास संज्ञा में ही होता है।

तेनेह न इति—इसलिये **उत्तर व क्षाः, प च ब्राह्मणाः**—यहां समास नहीं हुआ, क्योंकि यहां संज्ञा नहीं है।

तद्धिता र्थोउरपद-समाहारे चे 2.1.51

तद्धितार्थे विषये, उत्तरपदे च परतः, समाहारे च वाच्ये, दिक्-संख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भवः—पूर्वशालः, इति समासे जाते। (वा) सर्वनाम्नो व त्ति-मात्रे पुंवद्भावः।

व्याख्याः **तद्धितार्थेति**—तद्धिता र्थ के विषय में, उत्तरपद रहते और समाहार जब वाच्य हो, तब दिशावाचक और संख्यावाचकों का समास होता है।

इस सूत्र में तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार पदों का द्वन्द्व समास हुआ है। उस समस्त शब्द से सप्तमी विभक्ति हुई। सप्तमी यद्यपि यहां एक है, परन्तु विषयभेद से उसके भिन्न-भिन्न अर्थ हो गये हैं, ‘एकापि सप्तमी विषयभेदाद् भिद्यते’। तद्धितार्थ के साथ ‘सप्तमी का अर्थ है’-**विषय,** उत्तरपद के साथ-पर और समाहार के साथ-**वाच्य**। इसलिये ही उपर्युक्त अर्थ किया गया है।

दिग्वाचक का समाहार अर्थ में समास नहीं होता, क्योंकि कहीं ऐसा कहा नहीं गया। अतः दिग्वाचक सुबन्त के तद्धितार्थ के विषय में ओर उत्तरपद परे रहते ही समास होगा, इस प्रकार दो ही उदाहरण होंगे।

संख्या वाचक के समास के तीनों स्थलों में उदाहरण मिलेंगे।

इस प्रकार इस सूत्र के पांच उदाहरण होंगे। परन्तु यहां तीन ही उदाहरण दिये गये हैं। एक दिग्वाचक का तद्धितार्थ के विषय में और दो संख्यावाचक के उत्तरपद परे रहते और समाहार अर्थ में।

सब से दिग्वाचक पद का तद्धितार्थ विषय का उदाहरण देते हैं।

पूर्वस्यामिति—तद्धित के अर्थ में समास दिखाने के लिये यह विग्रह वाक्य दिखाया गया है। पूर्ववाली शाला में होनेवाला, ‘तत्र भवः-होनेवाला’ अर्थ तद्धित का है। उस अर्थ में पूर्व और शाला का समास हुआ। सुप् का लोप होने पर ‘पूर्वा शाला’ यह स्थिति बनी।

(वा) **सर्वनाम्न इति**—सर्वनाम को व त्तिमात्र में अर्थात् कृदन्त आदि पाचों व त्तियों में पुंवद्भाव हो।

यहां समास व त्ति है। ‘पूर्वा’ सर्वनाम है, पुंवद्भाव होने पर टाप् नहीं रहा। ‘पूर्वशाल’ यह स्थिति बनी।

दिक-पूर्वदाद् अ-संज्ञायां ाः 4.2.107

अस्माद् भवार्थे ाः स्याद् असंज्ञायाम्।

व्याख्याः **दिक्पूर्वेति**—जिसके पूर्व दिशावाचक शब्द हो उससे भव (होनेवाला) अर्थ में ा प्रत्यय हो, पर संज्ञा में न हो।

ा का ाकार इत्संज्ञक है, केवल अकार शेष रहता है।

‘पूर्वशाल’ शब्द में पूर्वपद ‘पूर्व’ दिशावाचक है, अतः प्रकृत सूत्र से ा प्रत्यय हुआ।

तद्धितेष्वचाम् आदेः 7.2.117

ितिति णिति च तद्धितेष्वचाम्—आदेरचो व द्धिः स्यात्। यस्येति च-पौर्वशालः। प च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ। (वा) द्वन्द्व-तत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्।

व्याख्याः **तद्धितेष्विति**—ित् और णित् तद्धित प्रत्यय परे रहते अचों में आदि अच् की व द्धि हो।

पौर्वशालः (पूर्ववाले घर में जो पैदा हुआ हो)—यहां ‘पूर्वशाल+अ’ इस पूर्वोक्त स्थिति में ित् ा प्रत्यय परे होने के कारण अचों में आदि अच ऊकार को व द्धि औकार हुई। ‘यस्येति च 6.4.48’ से लकार के आगे के अकार का लोप होने पर प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

(वा) **द्वन्द्वेति**—उत्तरपद परे रहते जो द्वन्द्व और तत्पुरुष समास होते हैं, उनको नित्य समास कहना चाहिए।

'प च गावो धनं यस्य' इस त्रिपद बहुव्रीहि के अन्तर्वर्ती 'प चगव' इस तत्पुरुष को विकल्प प्राप्त होता है, उसका इस वार्तिक से निषेध हो जाता है क्योंकि यहां उत्तर पद परे रहते तत्पुरुष समास होता है।

प च गावो धनं यस्य (पांच गाय हैं धन जिसके)-यहां तीन पदों का बहुव्रीहि समास होता है। इसके पूर्व 'प च' और 'गावः' का 'तद्धितार्थ-' सूत्र से उत्तरपद धन परे रहते समास हुआ और प्रकृत वार्तिक से वह नित्य हुआ, क्योंकि वह तत्पुरुष उत्तरपद परे रहते हुआ। समास होने पर सुप् का लोप हुआ।

गोरतद्धित-लुकि 5.4.92

गो न्तात् तत्पुरुषात् टच् स्यात् समासो न्तो, न तु तद्धित-लुकि। प च-गव-धनः।

व्याख्याः **गोरिति**—गो शब्द जिसके अन्त में हो, ऐसे तुपुरुष से टच् प्रत्यय समासान्त हो, परन्तु तद्धित प्रत्यय का जहां लोप हुआ हो, वहां न हो।

प च-गव-धनः—यहां 'प चन् गो' यह तत्पुरुष गोशब्दान्त है, इसलिये प्रकृत सूत्र से टच् प्रत्यय समासान्त हुआ। तब गो के ओकार को अव् आदेश होकर उक्त रूप से सिद्ध हुआ।

तत्पुरुषः समाना धिकरणः कर्मधारयः 2.1.42

व्याख्याः **तत्पुरुष इति**—समानाधिकरण तत्पुरुष को कर्मधारय कहते हैं।

समानाधिकरण का अर्थ है समानविभक्त्यन्त-पद-विषयक अर्थात् जहां पूर्व और उत्तरपद दोनों समानविभक्त्यत हों।

इसके पूर्व जो तत्पुरुष आये हैं उनमें पूर्व और उत्तरपद भिन्नविभक्त्यन्त है अतः उन्हें व्यधिकरण तत्पुरुष कहते हैं।

संख्या-पूर्वो द्विगुः 2.1.52

'तद्धितार्थ—' इत्यत्रोक्तः त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात्।

व्याख्याः **संख्यापूर्व इति**—'तद्धितार्थ-' इस सूत्र में बताया हुआ तीन प्रकार का संख्यापूर्व समास 'द्विगु' संज्ञक होता है अर्थात् उसकी 'द्विगु' संज्ञा होती है।

द्विगुरेकवचनम् 2.4.1

द्विगुवर्थः समाहार एकवत् स्यात्।

व्याख्याः **द्विगुरिति**—द्विगु समास का अर्थ समाहार एकवचन हो।

स नपुंसकम् 2.4.17

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्। प चानां गवां समाहारः-प चगवम्।

व्याख्याः **स इति**—समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक हो।

प च-गवम् (प चानां गवं समाहारः, पांच गायों का समुदाय)-यहां 'प चन् आम् गो आम्' इस अलौकिक विग्रह में समाहार अर्थ में 'तद्धितार्थ-' से समास हुआ। समास होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा हुई और तब सुप् लुक् अर्थात् दोनों आम् का लोप। नकार का 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य 8.2.78' से लोप और 'गोरतद्धितलुकि 5.4.92' से टच् प्रत्यय समासान्त होने पर ओकार को अव् आदेश होकर 'प चगव' शब्द बना।

संख्यापूर्व होने से इसकी 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगु संज्ञा हुई। समाहार होने से 'द्विगुरेकवचनम्' से एकवचनान्त और 'स नुंसकम्' से नसपुंक होकर 'प चगवम्' रूप सिद्ध हुआ।

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् 2.1.57

भेदंक भेद्येन समना धिकरणेन बहुलं प्राग्वत् नीलम्। उत्पलम् नीलोत्पलम्। बहुलग्रहणात् क्वचिद् नित्यम्—कृष्ण-सर्पः, क्वचिद् न -रामो जामदग्न्यः।

व्याख्याः **विशेषणमिति**—भेदक-विशेषण-का भेद्य-के साथ बहुलता से समास होता है।

भेदक विशेषण को कहते हैं, क्योंकि वह विशेष्य का अन्य से भेद बताता है और भेद्य विशेष्य को कहते हैं, क्योंकि उसे ही अन्य से भिन्न किया जाता है। विशेषण और विशेष्य दोनों एक ही पदार्थ को कहते हैं, इसलिये इन्हें समानाधिकरण कहा जाता है।

विशेषण और विशेष्य के समास में विशेषण पहले आता है क्योंकि समाससाास्त्र में 'विशेषण' पद प्रथमान्त है।

नीलोत्पलम् (नीलम्, उत्पलम्, नीला कमल)-'नील सु उत्पल सुं इस अलौकिक विग्रह में प्रकृत सूत्र से समास हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् का लुक् होकर 'नीलोत्पल' शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

बहुलेति—विशेषण समासविधायक सूत्र में 'बहुल' ग्रहण से यह समास कहीं नित्य होता है और कहीं होता ही नहीं।

कृष्ण-सर्पः (काला सांप)-यहां 'कृष्ण सु सर्प सु' इस अलौकिक विग्रह में विशेषण समास हुआ। बहुल ग्रहण से यहां नित्य हुआ।

नित्य समास होने से 'कृष्णश्वासी सर्पश्च' इस विग्रह वाक्य के द्वारा समास का अर्थ नहीं प्रतीत होता। 'काला सांप' की विशेष जाति है।

रामो जमदग्न्यः—यहां विशेष्य विशेषण हैं, पर 'बहुल' ग्रहण के कारण के साथ समास नहीं होता।

उपमानानि सामान्य-वचनैः 2.1.55

घन इव श्यामः—घन-श्यामः। (वा) शाक-पार्थिवा दीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्। शाक-प्रियः पार्थिवः-शाकपार्थिवः। देव-पूजको ब्राह्मणः-देवब्राह्मणः।

व्याख्याः **उपमानानीति**—उपमानवाचक सुबन्त का [1]समानधर्मवाचक सुबन्त के साथ समास होता है।

उपमान उसे कहते हैं जिससे किसी की समता बताई जाय और जिस धर्म से समता बताई जाती है उसे साधारण धर्म कहते हैं।

घन-श्यामः(घन इव श्यामः, मेघ के समान श्याम वर्णवाला)-'घन सु श्याम सु' इस अलौकिक विग्रह में उपमान घन का साधारणधर्मवाचक श्याम पद के साथ समास प्रकृत सूत्र से हुआ। सुप् का लोप होने पर प्रथमा के एकवचन में रूप सिद्ध हुआ।

लौकिक विग्रह में समानतावाचक शब्द 'इव' का ग्रहण अर्थ की स्पष्टता के लिये है, समास तो घन और श्याम इन दो पदों का ही होता है। समानता अर्थ घन इस उपमानपद से ही लक्षण के द्वारा प्रतीत होता है अर्थात् 'घन' यह पद 'घन' के समान' अर्थ में लाक्षणिक है।

(वा) **शाकेति**—'शाक-पार्थिव' आदि समस्त पदों की सिद्धि के लिये उत्तरपद के लोप का परिगणन होता है।

शाक-पार्थिवः (शाकप्रियः, पार्थिवः, शाक को पसन्द करनेवाला राजा)-यहां शाकप्रिय और पार्थिव का समास हुआ और शाकप्रिय के उत्तर पद 'प्रिय' का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

देव-ब्राह्मणः (देवपूजको ब्राह्मणः, देवताओं को पूजनेवाला ब्राह्मण)-यहां देवपूजक और ब्राह्मण पदों का समास हुआ और देवपूजक के उत्तरपद 'पूजक' का लोप होकर रूप बना।

---

1. समानस्य भावः धर्मो वा सामान्यम् अर्थात् दो समान पदार्थों का धर्म-फलितार्थ हुआ साधारण धर्म।

न ञ् 2.2.6

न ञ् सुपा सह समस्यते

व्याख्याः **न ञ् इति**—न ञ् का सुबन्त के साथ समास होता है।

निषेधार्थक न को न ञ् कहते हैं। इस समास को न ञ् समास कहा जाता है।

न-लोपो न ञः अचि 6.3.7

न ञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः।

व्याख्याः **नलोप इति**—न ञ् के नकार का लोप हो उत्तरपद परे रहते।

अब्राह्मणः (ब्राह्मण से भिन्न और ब्राह्मण के सद श अर्थात् क्षत्रिय आदि)-'न ब्राह्मणः' यह लौकिक विग्रह और 'न ब्राह्मण सु' यह अलौकिक विग्रह है। न ञ् का पूर्व सूत्र से 'ब्राह्मणः' इस सुबन्त के साथ समास होने पर प्रकृत सूत्र से उसके नकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

तस्माद् नुड् अचि 6.3.74

लुप्त-नकाराद् न ञ उत्तरपदस्याजादेः 'नुट्' आगमः स्यात् अनश्वः। 'नैकधा' इत्यादौ तु न'शब्देन सह 'सह सुपा 2.1.4'' समासः।

व्याख्याः **तस्मादिति**—जिस न ञ् के नकार का लोप हो गया और उससे पर अजादि उत्तरपद को नुट् आगम हो।

अनश्वः (न अश्वः, घोड़े से भिन्न और घोड़े के समान अर्थात् गधा आदि)-यहां न ञ् समास होने पर 'नलोपो न ञः' से न ञ् के नकार का लोप हुआ। तब 'अ अश्व' इस स्थिति में उत्तरपद के अजादि होने के कारण उसे 'तस्मान् नुड अचि' से नुट् आगम होकर रूप सिद्ध हुआ।

नैकधेति—नैकधा (अनेक प्रकार से) में न शब्द का ''सह सुपा'' सूत्र से केवल समास हुआ।

यदि न ञ् शब्द का समास किया जाए तो नकार का लोप होकर उत्तरपद 'एकधा' के अजादि होने से उसे नुट् आगम होगा और 'अनेकधा' रूप बनेगा।

कु गति प्रा दयः2.2.18

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितःपुरुषः-कु-पुरुषः।

व्याख्याः **कु-गतीति**—'कु शब्द गतिसंज्ञक और प्र आदि का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास होता है।

कु-पुरुषः (कुत्सितः पुरुषः, बुरा आदमी)-यहां 'कु' शब्द अव्यय का समर्थ सुबन्त पुरुष के साथ प्रकृत सूत्र से समास होकर रूप बना।

गतिसंज्ञक और प्र आदि के उदाहरण आगे दिये जाएंगे। यद्यपि गतसंज्ञा प्र आदि की ही होती है, तथापि प्र आदि का प्रथग् ग्रहण इसलिये किया गया है कि जिस[1] क्रिया के साथ प्र आदि हो उसी के प्रति वे गतिसंज्ञक होते हैं अन्य के प्रति ये केवल प्र आदि ही कहे जाते हैं। जैसे-प्रगत आचार्यः प्राचार्यः' यहां गमन क्रिया के साथ योग होने से प्र की गतिसंज्ञा उसी के प्रति होगी, आचार्य के प्रति नहीं, उसके प्रति प्र केवल प्रा दि ही कहा जाएगा।

ऊर्यादि-च्वि डाचश्च 1.4.61

ऊर्यादयः, च्व्यन्ता, डाजन्ताश्च क्रिया-योगे गति-संज्ञाः स्युः। ऊरीकृत्य। पटपटाकृत्या शुक्लीकृत्य। सु-पुरुषः। (वा) प्रा दयो गताद्यर्थे प्रथमया। प्रगत आचार्यः-प्रा चार्यः। (वा) अत्यादयः क्रान्ता द्यर्थे द्वितीयया। अतिक्रान्ता मालामिति विग्रहे।

---

1. 'यत्- क्रिया-युक्तः प्रा दयः, तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञा भवन्ति'।

व्याख्याः **ऊर्यादीति**—ऊरी आदि, च्विप्रत्यया न्त और डाच्-प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के योग में गतिसंज्ञक होते हैं।

गतिसंज्ञा का फल है पूर्व सूत्र से समास होना। इन गति संज्ञकों के समास को 'गतिसमास' कहते हैं।

ऊरीकृत्य (स्वीकार करके)-यहां कृ धातु के योग में प्र आदि से भिन्न स्वीकारार्थक ऊरी' शब्द की प्रकृत सूत्र से गतिसंज्ञा हुई, 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से उसका 'कृ' धातु के साथ समास हुआ। समास के फलरूप में 'समासे न ा्पूर्वे क्त्वो ल्यप् 7.1.37' से क्त्वा को ल्यप् आदेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

शुक्लीकृत्य (अशुक्लं शुक्लं कृत्वा-जो सफेद नहीं उसे सफेद करके)-यहां अभूततद्भाव अर्थ में 'अभूतद्भावे इति वक्तव्यम्' इस वार्तिक के सहयोग से 'कृ-भ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः' इस सूत्र के द्वारा च्वि प्रत्यय होने पर 'शुक्ल' के अकार का 'अस्य च्वौ' से ईकार हुआ। च्विप्रत्ययान्त होने से 'शुक्ली' की गति संज्ञा हुई और पूर्व सूत्र से कृ के साथ समास होने पद 'समासे न ा् क्त्वो ल्यप् से क्त्वा प्रत्यय को ल्यप् आदेश करने पर रूप बना।

पटपटाकृत्य (पटत् पटत् इति कृत्वा, पट पट कर)-यहां 'पटत्' इस अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण शब्द से कृ धातु के योग से 'अव्यक्ता नुकरणाद् द्व्यजवरार्धाद् अनितौ डाच् 5 सूत्र से डाच् प्रत्यय हुआ। डाच् का आ शेष रहा। 'डाचि च द्वे बहुलम्' से 'पटत्' को द्वित्व हुआ। डित् होने से डाच् परे रहते 'अत्' टि का लोप हुआ और पूर्व 'पटत्' के तकार और उत्तर पटा डाजन्त के पूर्व पकार-दोनों के स्थान में पररूप पकार होकर 'पटापटाकृ' यह रूप बना। इनमें 'पटपटा' की डाजन्त होने से गतिसंज्ञा होकर समास हुआ और तब क्त्वा के स्थान में ल्यप् होकर रूप सिद्ध हुआ।

सुपुरुषः (शोभनः पुरुषः-अच्छा आदमी)-यहां सु प्रा दि है, क्योंकि क्रिया का योग न होने से इसकी गति संज्ञा नहीं, यह केवल प्रादि है इसका समर्थ सुबन्त 'पुरुषः' के साथ 'कु-गति-प्रादयः' इस सूत्र से समास होकर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **प्रा दय इति**—प्र आदि का प्रथमान्त समर्थ के साथ गत इत्यादि अर्थ में समास होता है।

कुगतिप्रादयः से प्रादि समास सामान्य रूप से कहा गया है, अव्यवस्था से समास न होने लगे, इस कारण व्यवस्था के लिये ये वार्तिक पढ़े गये हैं।

प्रा चार्यः—(प्रगत आचार्यः, प्रधान आचार्य)-यहां प्र का प्रथमान्त 'आचार्यः' के साथ समास होने पर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **अत्यादय इति**—अति आदि का द्वितीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है क्रान्त आदि अर्थ में।

अतिक्रान्तो मालाम्—माला का जो अतिक्रमण कर दिया हो, इस विग्रह में द्वितीयान्त समर्थ 'मालाम्' के साथ क्रान्त अर्थ में 'अति' का समास हुआ। समासशास्त्र 'अत्यादयः-' में प्रथमान्त पद 'अत्यादयः' से बोध्य विग्रह में वर्तमान 'अति' शब्द की 'प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से उपर्सन संज्ञा होने पर 'उपसर्जनम् पूर्वम्' से उसका पूर्व प्रयोग हुआ। समास होने के कारण प्रातिपदिक संज्ञा होने से 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् का लोप होने पर 'अतिमाला' वह स्थिति बनी।

एक-विभक्ति चा पूर्व-निपाते 1.2.44

विग्र हे यद् नियतिविभक्तिकं तद् उपसर्जनसंज्ञं स्याद् न तु तस्य पूर्वनिपातः।

व्याख्याः **एक-विभक्तीति**—विग्रह में जो नियतविभक्ति हो अर्थात् जिससे एक ही विभक्ति आती हो, उसकी उपसर्जन संज्ञा हो, परन्तु उसका पूर्व प्रयोग न हो।

उपसर्जन संज्ञा का फल पूर्व प्रयोग होता है, उसका यहां निषेध कर दिया गया है, फिर इस उपसर्जन संज्ञा का क्या फल होता है? इस उपसर्जन संज्ञा का फल स्त्रीलिंग को ह्रस्व करना आगे बताया जा रहा है।

'अतिक्रान्तो मालाम्' यहां 'मालाम्' इस पद की विग्रह में सदा द्वितीयान्त रहने से नियत-विभक्तिक होने के कारण उपसर्जन संज्ञा हुई।

गो-स्त्रियोरुपसर्जनस्य 1.2.48

उपसर्जनं यो गोशब्दः, स्त्रीप्रत्यान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः। (वा) अवा दयः क्रुष्टा द्यर्थे त तीयया। अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः। (वा) पर्यादयो ग्लाना द्यर्थे चतुर्थ्या। परिग्लानोध्ययनाय-पर्यध्ययनः। (वा) निरादयः क्रान्ता द्यर्थे प चम्या। निष्क्रान्त कौशाम्ब्या-निष्कौशाम्बिः।

व्याख्याः **गो-स्त्रियोरिति**—उपसर्जन जो गो-शब्द और स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द, तदन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो।

अति-मालः—यहां उपसर्जन माला शब्द स्त्रीप्रत्ययान्त है, तदन्त अतिमाला प्रातिपदिक के अन्त आकार को ह्रस्व होने पर 'अतिमाल' यह ह्रस्व अकारान्त शब्द बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **अवा दय इति**—अब आदि का त तीयान्त समर्थ सुबन्त के साथ क्रुष्ट आदि अर्थ में समास होता है।

अव-कोकिलः—(अवक्रुष्टः कोकिला, कोयल से कूजित हुआ)-यहां अब का त तीयान्त समर्थ 'कोकिलया' के साथ प्रकृत वार्तिक से समास हुआ। सुप् का लोप होने पर 'एक विभक्ति- चा पूर्व-निपाते' से विग्रह में नियतविभक्तिक होनेसे 'कोकिला' की उपसर्जन संज्ञा हुई और 'गो-स्त्रयोरूपसर्जनस्य' से ह्रस्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **पर्यादय इति**—परि आदि का चतुर्थ्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ ग्लानि आदि अर्थ में समास होता है।

पर्यध्ययनः (परिग्लानो ध्ययनाय, पढ़ने के लिये खिन्न)-यहां परि का चतुर्थ्यन्त समर्थ 'अध्ययनाय' इस सुबन्त के साथ ग्लान अर्थ में समास होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **निरादय इति**—निर् आदि का प चम्यन्त समर्थ सुबन्त के साथ निष्क्रान्त इत्यादि अर्थ में समास होता है।

निष्कौशाम्बिः (निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः, कौशाम्बी[1] नगरी से जो निकल गया है)-यहां निर् का निष्क्रान्त अर्थ में प चंम्यन्त समर्थ कौशाम्ब्याः के साथ समास तथा सुप् का लोप होने पर विग्रह में नियत विभक्ति होने से 'कौशाम्बी' की उपसर्जन संज्ञा होकर ह्रस्व हुआ।

'कुगति-प्रा दयः' से होनेवाले समास को जब वह गति का हो तब गति-समास और जब प्रादि का हो तब प्रादि-समास कहा जाता है।

तत्रोपपदं सप्तमी-स्थम् 3.1.91

सप्तम्यन्ते पदे 'कर्मणि' इत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भा दि, तद्-वाचकं पदम् उपपदसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः **तत्रोपपदमिति**—सप्तम्यन्त पद 'कर्मणि' इत्यादि में वाच्यरूप से स्थित जो कुम्भ आदि उसके वाचक पद की उपपद संज्ञा हो।

'कर्मण्यण्' आदिसूत्रों में 'कर्मणि' आदि सप्तम्यन्त पद आते हैं, उसमें 'कुम्भ' आदि अर्थ वाच्य रूप से रहते हैं, क्योंकि अर्थ वाचक पद में वाच्यरूप से रहता है और वाचक पद अपने अर्थ में वाचकरूप में, इसलिये उस अर्थ का वाचक पद 'कुम्भ' आदि 'कुम्भं करोतीति कुम्भकारः' इत्यादि उदाहरण में आता है, उसकी उपपद संज्ञा होती है।

उपपदम् अतिङ् 2.2.19

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते, अ-तिङ्न्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति-कुम्भ-कारः। अतिङ् किम्-मा भवान् भूत्, 'माङि लुङ्' इति सप्मीनिर्देशान् माङ् उपपदम्। (वा) गति-कारकोपपदानां कृद्भिः सह समास-वचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। व्याघ्री, अश्व-क्रीती, कच्छ-पी-इत्यादि।

व्याख्याः **उपपदमिति**—उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ नित्य समास होता है और यह समास अतिङन्त होता है अर्थात् तिङन्त के साथ नहीं होता।

कुम्भ-कारः (कुम्भं करोति, घड़ा बनानेवाला-कुम्हार)-यहां पहले द्वितीयान्त कुम्भ उपपद रहते कृ धातु से 'कर्मण्यण्' से अण् प्रत्यय होने पर धातु के ऋकार को 'अचो णिति' से आर् व द्धि हुई। तब 'कुम्भ अम् कार' इस

1. कौशाम्बी प्राचीन समय की एक नगरी का नाम है।

अलौकिक विग्रह वाक्य में प्रकृत रूप से समास हुआ, क्योंकि यहां 'कर्मण्यण्' इस सूत्र में स्थित 'कर्मणि' इस सप्तम्यन्त पद से बोध्य उदाहरण में 'कुम्भ अम्' शब्द पूर्वोक्त 'तत्रोपपदं सप्तमी-स्थम्' सूत्र से उपपद संज्ञक है। तब प्रातिपदिक संज्ञा होने के कारण सुप् अम् का लोप होने पर 'कुम्भकार' शब्द बना। उसका प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

ध्यान में रहे कि यहां उत्तरपद 'कार' सुबन्त नहीं, क्योंकि सुबन्त बनने के पूर्व ही उसके साथ 'गति-कारकोपपदानां कृदिभ्: समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः-गति, कारक और उपपद का कृदन्त के साथ सुप् आने के पहले ही समास हो जाता है' इस परिभाषा के अनुसार उपपद का समास हो जाता है।

इसलिए ही सूत्र की व त्ति में 'समर्थेन' केवल कहा है, उसके साथ 'सुबन्तेन' नही कहा। तात्पर्य यह है कि इस सूत्र में 'सुपा' इसकी अनुव त्ति नहीं आती।

इस समास को **उपपद-समास** कहते हैं। कृदन्त प्रकरण मे जहां सूत्र में 'सुबन्त' उपपद रहते प्रत्यय का विधान किया गया हो, वहां उपपद के साथ कृदन्त के साथ इसी सूत्र से वह उपपद-समास होता है।

यह नित्य समास है, इसलिये 'कुम्भं कार' ऐसा स्वपपद-विग्रह नही होता, अपितु 'कुम्भं करोति' यह अस्वपद विग्रह होता है।

अतिङ् इति—यह समास अतिङन्त होता है, ऐसा क्यों कहा? इसलिए कि **'मा भवान् भूत्** यहां समास हो। यहां 'मा' उपपद है क्योंकि माङि लुङ् इस सूत्र में 'माङि' यह सप्तम्यन्त है और उसके द्वारा उदाहरण में 'मा' पद का ही ज्ञान होता है। परन्तु 'भूत्' यह तिङन्त है, इसके साथ समास नहीं हुआ।

(वा) **गति-कारकेति**—गति, कारक और उपपद का कृदन्त पदों के साथ समास सुप् आने के पूर्व हो।

आगे तीनों के उदाहरण क्रमशः दिये जा रहे हैं। **गति-समास** का उदाहरण-व्याघ्री, (बाघिन)-यहां 'व्याजिघ्रति-विशेष-रूप से चारों ओर सूंघती है' इस विग्रह में वि आङ् पूर्वक घ्रा से 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से क प्रत्यय हुआ। तब 'व्या' का 'घ्र' के साथ सुप् आने के पहले गति-समास हुआ। तदनन्तर 'व्याघ्र' शब्द के जातिवाचक होने से 'जातेरस्त्री-विषयाद् अ-योपघात्' सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर रूप बना। **कारक-समास** का उदाहरण अश्व-क्रीती और उपपद समास का उदाहरण कच्छ-पी है।

सुबन्त के साथ यदि यहां समास किया जाए तो 'घ्र' शब्द सुबन्त पहले बनेगा और सुप् आने के पहले लिङ्गबोधक प्रत्यय आएगा, क्योंकि 'स्वार्थद्रव्यलिङ्गसंख्याकारकाणि प चकं प्रातिपदिकार्य%' के अनुसार संख्या-कारक-वाचक सुप् की अपेक्षा लिङ्ग अन्तरङ्ग है। अतः 'घ्र' शब्द जातिवाचक नहीं, क्योंकि उससे जाति का बोध नहीं होता, इसलिए जातिलक्षण ङीप् न होगा, किन्तु सामान्य टाप् प्रत्यय होने लगेगा। इस दोष को दूर करने के लिये प्रकृत परिभाषा ने सुप् आने के पूर्व समास का विधान किया, सुप् जब समास के पूर्व नहीं आएगा तो लिंगबोधक प्रत्यय भी नहीं आता। समास 'घ्र' प्रातिपदिक के साथ ही हो जाता है। तब 'व्याघ्र' शब्द बन जाता है, उससे जाति का बोध होता है, इसलिए जातिलक्षण ङीप् हो जाता है।

इस प्रकार सुप् आने के पूर्व समास के विधान का फल सिद्ध होता है।

अश्व-क्रीती—(अश्वेन क्रीता, घोड़े के द्वारा खरीदी हुई)-यहां 'क्रीत' के साथ समास हुआ। यहां भी दन्त 'क्रीत' के साथ सुप् आने के पूर्व ही समास हुआ। फल इसका 'क्रीतात् करण-पूर्वात्' से ङीप् होना है। अन्यथा सुप् के पहले लिंगबोधक प्रत्यय लाना होगा और केवल क्रीत से जाति का बोध नहीं होता, तब टाप् होता। समास पहले होने से फिर जातिवाचक शब्द होने से जातिलक्षण ङीष् होकर रूप सिद्ध हुआ

कच्छ-पी (कच्छेन पिबति, कछुवी)-यहां 'सुपि स्थः' इस सूत्र के 'सुपि' इस योगविभाग से सुबन्त कच्छ उपपद रहते पा धातु से क प्रत्यय हुआ। 'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होने पर उत्तरपद 'प' यह अकारान्त बना। तब सुप् होने से पहले 'प' के साथ पूर्वोक्त 'उपपदम् अतिङ्' सूत्र से उपपद-समास होने पर 'कच्छप' शब्द बना। जातिवाचक होने से स्त्रीलिंग में जातिलक्षण ङीष् प्रत्यय होकर रूप सिद्ध हुआ।

यहां भी समास यदि सुबन्त की अपेक्षा करे तो सुप् से पूर्व स्त्रीत्व की विवक्षा में केवल 'प' से जाति की प्रतीति न होने से टाप् ही होगा, ङीष् नहीं।

प्रथम उदाहरण 'कुम्भकारः' में इसीलिए 'कम्भ अम् कार' इस प्रकार अलौकिक विग्रह में'कार' को शुद्ध प्रातिपदिक ही रखा है।

तत्पुरुषस्या ङ्गुलेः संख्या व्यया दे 5.4.85

संख्या व्यया देरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तो च् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य-द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यः-निरङ्गुलम्।

व्याख्याः **तत्पुषस्येति**—संख्यावाचक और अव्यय जिसके आदि में और अङ्गुलि शब्द अन्त में हो, उस तत्पुरुष को समासान्त अच् प्रत्यय हो।

द्व्यङ्गुलम् (द्वे अङ्गुली प्रमाणस्य, दो अङ्गुल लम्बा)-यहां 'द्वि और अङ्गुलि औ' इस अलौकिक विग्रह में तद्धितार्थ प्रमाण में 'तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च' से समास हुआ। प्रमाणार्थ में आये मात्रच् प्रत्यय का 'द्विगोर्लुग् अनपत्ये' इस सूत्र से लोप होने पर प्रातिपदिक के अवयव होने से सुप् औ दोनों का लोप हुआ। तब 'द्वि अङ्गुलि' इस स्थिति में संख्या-पूर्वक तत्पुरुष होने से प्रकृत सूत्र से अच् समासन्त प्रत्यय हुआ, अङ्गुलि के इकार का 'यस्येति च' से लोप होने पर 'द्व्यङ्गुल' यह अकारान्त शब्द बना। नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा के एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।

निरङ्गुलम् (निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः, अङ्गुलियों से निकला हुआ)-यहां निर् अव्यय का निर्गत अर्थ में 'निरादय क्रान्ताद्यर्थे प चम्याः' से प्रा दि समास हुआ और प्रकृत सूत्र से समासान्त अच् होने पर पूर्व इकार का लोप होकर पूर्ववत् रूप सिद्ध हुआ।

अहः—सर्वैकदेश-संख्यात-पुण्याच्च रात्रेः 5.4.87

एभ्यो रात्रेरच् स्यात्। चात् संख्या व्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वा र्थम्

व्याख्याः **अहिरिति**—अहः, सर्व, एकदेश, संख्यात और पुण्य इन शब्दों से और संख्या तथा अव्यय से परे रात्रि शब्द से समासान्त अच् प्रयय हो तत्पुरुष में।

अहर्ग्रहणमिति—इस सूत्र में 'अहः का ग्रहण द्वन्द्व समास के लिये है अर्थात् अहन् शब्द से पर रात्रि शब्द से अच् प्रत्यय द्वन्द्व में ही आएगा। क्योंकि 'अहन्' का 'रात्रि' के साथ द्वन्द्व समास होने की संभावना ही नहीं, तत्पुरुष को भी नहीं तत्पुरुष हो भी किस अर्थ में।

रात्राह्ना हाः पुंसि 2.4.29

एतदन्तौ द्वन्द्व-तत्पुरुषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्च- अहोरात्रः। सर्व-रात्रः। संख्यात-रात्रः। (वा) संख्या-पूर्वं रात्रं क्लीबम्। द्वि-रात्रम्। त्रि-रात्रम्।

व्याख्याः **रात्रा ह्नाहा इति**— रात्र, अह्न और अह-ये जिनके अन्त में हो, वे द्वन्द्व और तत्पुरुष पुंलिङ्ग मे ही आते हैं।

अहोरात्रः (अहश्च रात्रिश्च तयोः समाहारः दिन और रात)-यहां समाहार-द्वन्द्व में 'जातिप्राणिनाम्' से एकवद्भाव हुआ। 'सनपुंसकम्' से नपुंसक होना प्राप्त था, उसे बाधकर प्रकृत सूत्र से पुलिंग हुआ। पूर्व सूत्र अच् प्रत्यय होने पर इकार का लोप हुआ। अहन् के नकार को 'अहन्' सूत्र से रु और उसे 'हशि च' से उकार होने पर गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

सर्व-रात्रः (सर्वाः रात्र्यः, सब रातें)-यहां सर्व शब्द का रात्रि के साथ 'पूर्वकालैक[1]-सर्व-जरत्-पुराण-नव-केवलाः' इस सूत्र से समास हुआ। कर्मधारय समास होने के कारण पूर्व सर्वा पद को 'पुंवत् कर्मधारय-जातीय-देशीयेषु' इस सूत्र से पुद्भाव होकर 'सर्व' बना और 'अहः-सवैंक-' इस पूर्व सूत्र से समासान्त अच प्रत्यय होने पर इकार का लोप हुआ। तब 'सर्वरात्र' यह अकारान्त शब्द बना। प्रकृत सूत्र से पुंलिग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

संख्यात-रात्रः (संख्याता रात्रयः, गिनी हुई रात)-इसकी सिद्धि 'सर्वरात्रः' के समान होती है।

पूर्व-रात्रः[1] (पूर्वः रात्रेः, रात्रि का पूर्व भाग)-यहां एकदेशिसमास होकर पूर्व-सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और

---

1. यह सूत्र लघुकौमुदी में नहीं आया।

प्रकृत सूत्र से पुंलिग होने पर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **संख्या-पूर्वमिति**—संख्यापूर्वक रात्र शब्द नपुंसकलिंग होता है।

द्वि-रात्रम्— (द्वयोः रात्र्योः समाहारः, दो रात्रियों का समुदाय)-यहां 'द्वि ओस रात्रि ओस्' इस अलौकिक विग्रह में 'तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च' से समाहार समास होने पर सुप् का लोप हुआ। तब संख्यापूर्वक अवयव होने से तत्पुरुष का रात्रि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय पूर्वसूत्र से हुआ, इकार का लोप होने पर 'द्विरात्र' शब्द बना। प्रकृत सूत्र से पुंल्लिङ्ग प्राप्त था, उसका प्रकृतवार्तिक से बाध होकर नपुंसक लिङ्ग होकर रूप सिद्ध हुआ।

त्रि-रात्रम् (तिस णां रात्रीणां समाहार, तीन रातों का समुदाय)-इसकी सिद्धि 'द्विरात्रम्' के समान होती है।

राजा हः सखिभ्यष्टच् 5.4.91

एतदन्तात् तत्पुरुषात् टच् स्यात्। परम-राजः।

व्याख्याः **राजा ह इति**—राजन्, अहन् और सखि, ये शब्द अन्त में हों, तब उस तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो।

परम-राजः (परमश्च असै राजौ च, श्रेष्ठ राजा)-यहां परम और राजन् का समाना धिकरण तत्पुरुष समास हुआ। प्रकृत सूत्र से समासान्त टच् प्रत्य होने पर 'नस्तद्धिते से अन् अट का लोप होने पर अकारान्त शब्द बनकर प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार-**महाराजः, धर्मराजः, देवराजः, भोजराजः आदि राजन्** शब्दान्त तत्पुरुष के शब्द बनते हैं। **उत्तमाहः**(उत्तम दिन), **परमाहः** (श्रेष्ठ दिन), **पुष्याहम्** (पुण्य दिनङ) इत्यादि अहन् शब्दान्त और **कृष्णसखः** (कृष्ण का मित्र), **परमसखः** श्रेष्ठ मित्र, **विद्वत्सखः** विद्वानों का मित्र-इत्यादि सखि शब्दान्त शब्द भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः 6.3.46

महत अकारोन्तादेशः स्यात् समानाधिकरणे उत्तरपदे, जातीये च परे। महाराजः। प्रकारवचने जातीयर्, महाप्रकारो—महाजातीय।

व्याख्याः महत् शब्द को अकारान्तादेश हो समानाधिकरण उत्तरपद और जातीय परे होने पर। महाराजः, महाजातीयः।

स्त्रीलिङ्ग महती शब्द को भी आकार अन्तादेश होता है, पहले 'पुवंत् कर्म धारय-जातीय-देशीयेषु' से पुंवद्भाव होने से ङीप् प्रत्यय का लोप होता है।

जैसे-महती सुन्दरी-**महासुन्दरी,** महती नदी-इत्यादि।

महा-जातीयः (महाप्रकारः, बड़ा सा)-यहां महत् शब्द से प्रकार अर्थ में 'प्रकारवचने जातीयर्' से जातीयर् प्रत्यय हुआ। तब प्रकृत सूत्र से महत् शब्द को आकार अन्तादेशहुआ।

समानाधिकरण समास न होगा तो प्रकृत सूत्र से महत् शब्द को आकार अन्तादेश न होगा, जैसे-महतां-सेवा-महत्सेवा-बड़ों की सेवा-यहां षष्ठी समास है, अतःव्यधिकरण होने से आकार नहीं हुआ। समानाधिकरणता तो विशेषण और विशेष्य के समास में ही होती है।

बहुब्रीहि में उत्तरपद समानाधिकरण होता है, इसलिए वहां भी महत् शब्द को प्रकृत सूत्र से आकार अन्तादेश होता है, जैसे-महत् धनं महाधनः बहुत धनवाला, **महाफला** (महत्त फलं यस्या शा, बहु फलवाली इत्यादि।)

द्व्यष्ठनः संख्यायाम् अबहुव्रीह्यशीत्योः 6.3.47

आत् स्यात्! द्वौ च दश व द्वा-दश। अष्टाः विंशतिः।

व्याख्याः **द्व्यष्टन इति**—द्वि और अष्टन् शब्द को आकार अन्तादेश हो संख्या अर्थ में, परन्तु बहुवीहि समास में और 'अशीति' शब्द परे रहते नहीं होता।

---

1. यह उदाहरण वहां मूल में नहीं दिया गया है।

द्वा-दश द्वौ चच दश च अथवा द्व्यधिका दश-दो और दस अथवा दो अधिक दस अर्थात् बारह-यहां द्वि और द्वादशन् सुबन्तों का द्वन्द्वसमास अथवा 'सिंः तु' तु अधिकान्त संख्या संख्यया समानाधिकरणाधिकारे धिकलोश्च इस वार्तिक से समास हुआ और अधिक शब्द को लोप। प्रकृत सूत्र से द्वि को आकार अन्तादेश हुआ।

अष्टा-विंशति (अष्टौ च विंशतिश्च अथवा अष्टाधिका विंशतिश्च-अट्ठाईस) इसकी सिद्धि भी 'द्वाद्वश' के समान होती है। इसी प्रकार-**द्वा-विंशति** (बाईस) **द्वा-विंशत्** (बत्तीस) **अष्टा-दश** (अट्ठारह) **अष्टा-त्रिंशत्** (अठतीस)-इत्यादि शब्द बनते हैं।

पर-वत् (ल्) लिङ्ग द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुट-मयूर्याविमे। मयूरी-कुक्कुटाविमो। अर्धपिप्पली।

व्याख्याः **परवदिति**-द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर शब्द के समास में पर शब्द के समान लिङ्ग हो।

समस्त पद के लिङ्ग में यह सन्देह हो सकता है कि पूर्व पद के अनुसार लिङ्ग हो या उत्तरपद के अनुसार। इस सन्देह को निव त्ति के लिये परवत् लिङ्ग आदि का विधान है।

कुक्कुट-मयूर्यौ (कुक्कुटश्च मयूरी व मुर्गा और मोरनी)-यहां द्वन्द्व समास है परयह मयूरी है, उसी के समान स्त्रिीलिङ्ग सम्पूर्ण समस्त से भी हुआ।

'इमे' इस सर्वनाम का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग को स्पष्ट करने के लिये किया गया है अन्यथ कुक्कुट-मयूर्यौ कहने मात्र से यह नहीं सिद्ध होता है कि स्त्रीलिङ्ग है क्योंकि है समस्त पद पुल्लिङ्ग तो तब भी इसी प्रकार रूप बनता। इसलिये स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम पद 'इमे' का देना सफल है।

मयूरी-कुक्कुटौ (मोरनी और मुर्गा)-यहां पर पद कुक्कुट पुंल्लिङ्ग है। द्वन्द्व समास होने से समस्त पुंल्लिङ्ग हुआ है। 'इमौ' इस सर्वनाम का पूर्ववत स्पष्टता के लिये किया गया है।

अर्ध-पिपल्लींअर्ध पिप्पल्या, पिप्पली का आधा-यहां 'अर्ध नपुंसकम्' से समास होने पर समस्त पद प्रकृत से पर पद 'पिप्पली' के समान स्त्रीलिङ्ग हुआ।

(वा) **द्विगु-प्राप्ता पन्नङसंपूर्ण**—गतिसभासेषु प्रतिषेधोपाचयः। प चसु कपालषु संस्कृतः प चकपालः पुरोडाशः

(वा) **द्विगु-प्राप्तेति**—द्विगु समास प्राप्त आपन्न और अलं-पूर्वक समास तथ गति (प्रादि) समास से पर शब्द के समान लिङ्ग न हो।

प च-कपालः—(प चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः-पांच कपालों में संस्कृत)-यहां तद्धितार्थ संस्कृत में द्विगु समास हुआ। पर पद कपाल नपुंसकलिङ्ग है, उसके समान नपुंसकलिङ्ग समस्त पद से नहीं हुआ।

प्राप्ता पन्नेच द्वितीयया 2.2.4

समस्येते, अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविका प्राप्त-जीविकः। आपन्न-जीविकः। अलंक कुमार्यै-अलं-कुमारिः, अत एव ज्ञापकात समासः। निष्कौशाम्बिः।

व्याख्याः **प्राप्ता पन्ने इति**—प्राप्त और आपन्न सुबन्तो का द्वितीयान्त समर्थ के साथ समास होता है।

अससूत्र से समास विधान होने पर प्राप्त और आपन्न शब्दों का पूर्व निपात होता है। पक्ष में 'द्वितीया श्रिता तीत-सूत्र से समास होने पर द्वितीयान्त का पूर्व निपात होने से जीविका पन्न' ये शब्द बनते हैं।

प्राप्त-जीविकाः (प्राप्तो जीविकाम् जिसे जीविका मिल गई हो)-यहां प्रकृत सूत्र से समास हुआ। विग्रह में नियत-विभक्तिक होने से जीविका शब्द की 'एकविभक्ति चा पूर्व-निपाते' सेउपसर्जन संज्ञा हुई और गोस्त्रियोरूपसर्जनस्य' से उसे ह्रस्व अन्तादेश होने पर पूर्व सूत्र से पर पद जीविकाके समान समस्त पद से स्त्रीलिङ्ग प्राप्त था। वार्तिक से उसका निषेध हुआ। तब विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ।

आपन्न-जीविकाः (आपन्ना जीविकाम्, जीविका को प्राप्त)-इसकी सिद्धि 'प्राप्तजीविकः' के समान होती है।

अलंकुमारिः (अलं कुमार्यै, कुमारी के योग्य)-यहां पर पद 'कुमारी' स्त्रीलिङ्ग है। पूर्वसूत्र के द्वारा उसी का लिङ्ग समस्त पद से प्राप्त था, प्रकृत वार्तिक से निषेध होने के कारण विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ।

अत एवेति—अलं-पूर्वक समास से परशब्द के लिङ्ग का निषेध करना ही सिद्ध करता है कि 'अलं' का समास होता है। अतः इसी प्रमाण से 'अलं कुमारि' से समास हुआ।

निष्कौशाम्बिः—यहां प्रादिसमास[1] हुआ है। यहां भी पर पद स्त्रीलिङ्ग है, उसी का लिङ्ग समस्त पद से सूत्र के द्वारा प्राप्त था, वार्तिक से निषेध होने पर विशेष्य के अनुसार लिङ्ग हुआ।

अर्धर्चाः पुंसि च 2.4.31

अर्धर्चा दयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः, अर्धर्चम् एव ध्वज--तीर्थ-शरीर-मण्डप-यूप-देहा ङ्कुश-पात्र-सूत्रादयः। सामान्य नपुंसकम्-म दु पचति, प्रातः कमनीयम्

व्याख्याः **अर्धर्चा इति**—'अर्धर्च' आदि शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में हो।

इस सूत्र में स्थित 'अर्धर्चा' पर बहुवचान्त है। यदि 'अर्धर्च' इस एक ही शब्द को यहां ग्रहण कियाजाए तो बहुवचन करना व्यर्थ हो जाए इसलिए यहां अर्धर्चादि गण लिया गया है।

अर्धर्चः, अर्धर्चम् (अर्धम्, ऋचः, ऋचा का आधा)-यहां 'अर्ध नपुंसकम्' से समास होने पर 'ऋक्-पूरप (ब) धूःपथाम्' सूत्र से ससमासान्त 'अ' प्रत्यय होकर 'अर्धर्च' यह अकारान्त शब्द बनता है। पर यह ऋच् यहां स्त्रीलिङ्ग है समस्त पद का लिङ्ग उसी के समान पूर्व सूत्र से प्राप्त है। प्रकृत सूत्र से इसे पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग बना दिया।

लिङ्ग का प्रकरण यहां इसलिये दिया गया है कि अनेक शब्दों का समास होता है वे भिन्न-भिन्न लिङ्गवाले भी होते हैं, उनमें विचार उपस्थित होता है कि किसके अनुसार समस्त पद का लिङ्ग दिया जाए। इसकी व्यवस्था प्रकृत समासान्तर्गत लिङ्ग प्रकरण से की गई है।

अर्धचादिगण की समास के प्रसङ्ग से चर्चा की गई हे, क्योंकि उक्त गण में कुछ शब्द समस्त हैं। जो शब्द इस गण में असमस्त आ गये हैं, उनके भी लिङ्ग का निर्णय इस सूत्र के द्वारा किया गया है कि वे उभयलिङ्ग हैं।

तत्पुरुष समाप्त

अथ बहुव्रीहिः

शेषो बहुव्रीहिः 2.2.23

अधकारो यं प्राग् द्वन्द्वात्।

व्याख्याः **शेष**—शेष समास को बहुव्रीहि कहते हैं।

जिसको न कहा गया हो उसे शेष कहते हैं। 'द्वितीया श्रिता-' इत्यादि शास्त्र के द्वारा जिस विभक्ति का विशेष रूप से समास नहीं कहा गया, यह शेष हुआ। अतः प्रथमान्त का समास बहुव्रीहि होता है।

अधिकार इति—यहा अधिकार सूत्र है, इसका अधिकार 'चा र्थे द्वन्द्वः- इस सूत्र से पूर्व तक है, द्वन्द्व से पूर्व जो समास होते हैं, उनकी बहुव्रीहि संज्ञा होती है।

अनेकम् अन्य-पदा र्थे 2.2.24

अनेकं प्रथमान्तम अन्यस्य पदस्य र्थे वर्तमानं वा समस्यते, स बहुव्रीहिः

व्याख्याः **अनेकमिति**—अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्तों का समास होता है विकल्प से और वह बहुव्रीहि कहा जाता है।

इससे यह मालूम होता है कि बहुव्रीहि समास के लिए सभी पद प्रथमान्त अर्थात् समानाधिकरण होने चाहिए। 'अन्य पद के अर्थ में वर्तमान कहने से प्रथमा विभक्ति के अर्थ में यह समास नहीं होता, क्योंकि प्रथमा विभक्ति तो समास के अन्दर है, वह अन्य नहीं।

---

1. 'गतेः समासो येन' इस प्रकार बहुव्राहि करने से 'कु-गति-प्रादयः' यही सूत्र लिया जाता है। अन्यत्र फल न होने से प्रादि समास ही लिया जाता है। वार्तिक में गति ग्रहण से प्रादि-समास ही लिया जाता है क्योंकि मुख्य गति समास में लिङ्ग की चर्चा असंभव है।

बहुव्रीहित समास करनेवाले केवल पांच ही सूत्र हैं। जिनमें यह सूत्र पहला है और सामान्यभी। इसके आगे के चारों सूत्र विशेष हैं। 'लघु कौमुदी' में यही एक सूत्र बहुव्रीहि समास करने वाला दिया गया है, शेष चारों सूत्र यहां नहीं दिये गये।

इस एक सूत्र को छोड़कर बहुव्रीहि समास के प्रकरण में दिये गये अन्य सब सूत्र समास विधायक नहीं।

सप्तमी-विशेषणे बहुव्रीहौ 2.2.35

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्व स्यात्। अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरण-पदो बहुव्रीहिः।

व्याख्याः **सप्तमीति**—सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि में पहले प्रयोग हो।

जब यहां समस्यमान पद सभी प्रथमान्त होते है, समासशास्त्र प्रकृत सूत्र में प्रथमान्त 'अनेकम्' है, सभी को उसी का बोध होता है, समासशास्त्र प्रकृत सूत्र व्यवस्था करता है कि विशेषण को पहले रखना चाहिये।

अत एवेति—सप्तम्यन्त का पूर्व प्रयोग करने से ही सिद्ध होता है कि व्यधिकरण पदों का अर्थात् भिन्नविभक्तिक पदों का भी बहुव्रीहित होता है। तात्पर्य यह है कि जब प्रथमान्तों का ही बहुव्रीहि होता है तब सप्तम्यन्त की तो उसमें संभावना ही नहीं, फिर प्रकृत सूत्र में सप्तम्यन्त के पूर्व प्रयोग का विधान व्यर्थ होकर इस बात का प्रमाण होता है कि व्यधिकरण पदों का भी बहुव्रीहि होता है। जैसे-**कण्ठेकालः**-कण्ठेकालः यस्य-जिसके गले में काला निशान है अथवा म त्युकारक हालाहल विष है, **पद्मनाभः**-पद्मं नाभौ यस्य-कमल जिसकी नाभि में है अर्थात् भगवान् विष्णु, **शरजन्मा**-शरेभ्यो जन्म यस्य, सरकण्डों से जन्म है जिसका अर्थात् शिव जी का ज्येष्ठ पुत्र कार्तिकेय, ऊर्ण-**नाभः**-ऊर्णा नाभौ यस्य, ऊन जिसकी नाभि में हो अर्थात् मकड़ी। इनमें एक पद प्रथमान्त है दूसरे अन्यविभक्त्यन्त। अतः ये सब व्यधिकरण पद बहुव्रीहि समास के उदाहरण हैं।

हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्। 6.3.9

हलन्ताद् अदन्तात् सप्तम्या अलुक्। कण्ठे-कालः। प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढ-रथो नड्वान्। अपहृत-पशू रुद्रः। उद्ध तौदना स्थाली। पीता म्बरो हरिः। वीरपुरुषको ग्रामः। (वा) प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपद-लोप। प्रपतितपर्णः—प्र-पर्णः। (वा) न ाो स्त्यर्थानां वाच्यो, बा चोत्तरपद-लोपः। अविद्यमानपुत्रः अ-पुत्रः।

व्याख्याः **हलदन्तादिति**—हलन्त और अदन्त शब्द से पर सप्तमी विभक्ति का अलुक् हो संज्ञा में।

काण्ठे-कालः (नीलकण्ठ पक्षी या शिव)-यहां 'काण्ठे कालो यस्य' इस लौकिक और 'कण्ठ ङि काल सु' इस अलौकिक विग्रह में 'सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ' में 'सप्तमी' के ग्रहा रूप प्रमाण से व्याधिकरण पदों का भी बहुव्रीहि समास हुआ और और इसी सूत्र के द्वारा सप्तम्यन्त का पूर्व प्रयोग हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् के लोप की प्राप्ति हुई। प्रक त सूत्र ने अदन्त से पर सप्तमी का अलुक् किया। तब उत्तरपद के आगे सु का लोप होने पर 'काण्ठेकाल; यह अकारान्त प्रातिपादिक बना। प्रथमा के एकवचन में उक्त रूप सिद्ध हुआ।

हलन्त का उदाहरण-सरसिजम् (कमल) यह है। यहां 'सप्तम्यां जनेर्डः' से ड प्रत्यय हुआ और उपपद समास होने पर हलन्त सरस् शब्द से पर सप्तमी का अलुक् हुआ।

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रथमान्तों का बहुव्रीहि समास होता है और अन्य पद के अर्थ में होता है अर्थात् प्रथम-विभक्ति के अर्थ को छोड़कर शेष विभक्तियों के अर्थ में यह समास होता है। जिसके अर्थ में यह होता है उसे लौकिक विग्रह में 'यत्' शब्द के द्वारा कहा जाता है, जिस विभक्ति के अर्थ में होता है, 'यत्' शब्द के साथ वही विभक्ति दी हुई प्रतीत होती है। अब क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं।

द्वितीयार्थ में-प्राप्तोदको ग्रामः (प्राप्तम् उदकं यम्, जल ने जिसे प्राप्त कर लिया हो अर्थात् जहां जल पहुंच गया हो)-यहां द्वितीया विभक्ति के अर्थ में प्राप्त और उदक इन प्रथमान्तों का 'अनेकम् अन्य पदा र्थे' से समास हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् का लोप होकर अकारान्त शब्द बना, प्रथमा के एकवचन में रूप बना।

बहुव्रीहि समास से सिद्ध शब्द प्रायः विशेषण होते हैं और अतएव उनके लिङ्ग वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं।

त तीयार्थ में-ऊढ-रथो नड्वान् (ऊढो रथो येन, जिसने रथ न चलाया हो)-यहां त तीया विभक्ति के अर्थ में ऊढ और रथ इन प्रथमान्तों का समास हुआ।

चतुर्थ्यर्थ में-उपह त-पशू रुद्रः-उपहृत पशुर्यस्मै, जिसको पशु उपहार दिया गया हो।

पञ्चम्यर्थ में-उद्ध तौदना स्थालीः-उद्ध त ओदनो यस्याः, जिस बर्तन से भात निकाल लिया गया है।

षष्ठी के अर्थ में-पीता म्बरः हरिः-पीतानि अम्बराणि यस्य, जिसके पीले कपड़े हों-भगवान् विष्ण।

सप्तमी के अर्थ में-**वीर पुरूषको ग्रामः**-वीराः पुरूषा यस्मिन्, जिसमें वीर पुरूष हों। यहां समास और सामान्य समास कार्य होने पर 'शेषाद् विभाषा' सूत्र से 'कप्' प्रत्यय समासान्त होकर रूप सिद्ध होता है।

(वा) **प्रादिभ्य इति**-प्र आदि से पर धातु-ज पद का अर्थात् जो धातु से बना हुआ शब्द है, तदन्त का, अन्यपद के साथ समास होता है और उसके उत्तरपद का लोप भी होता है विकल्प से।

प्र-पर्णः (प्रपतितानि पर्णानि **यस्मात्**, जिसे पत्ते गिर चुके हों) यहां प्र से पर धातु से सिद्ध पतित शब्द है, तदन्त प्रपतित शब्द का अन्य पद 'पर्ण' के साथ समास और प्रपतित के उत्तरपद 'पतित' का लोप होने पर रूप सिद्ध हुआ।

(वा) **नञ इति**-नञ् से पर विद्यमानता अर्थ के वाचक जो पद हों, तदन्त का अन्य पद के साथ समास और उत्तर-पद का अर्थात् विद्यमानता र्थक पद का लोप होता है।

अ-पुत्रः (अविद्यमानः पुत्रो यस्य, जिसका पुत्र न हो)-यहां नञ् से पर विद्यमान अर्थ का वाचक विद्यमान शब्द है। तदन्त अविद्यमान पद का पुत्र इस अन्य पद के साथ समास और उत्तरपद विद्यमान का लोप होकर रूप सिद्ध होता है।

स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुस्काद्-अनूङ् समाना धिकरणे स्त्रियाम् अ-पूरणी-प्रिया दिषु 6.3.34

उक्तपुंस्काद् अनूङ्ऊङो भावो स्याइति बहुव्रीहिः, निपातनात् पञ्चम्या अलुक्, षष्ठयाश्च लुक्।
तुल्ये प्रव त्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात् पर ऊङो भावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात्, समानाधिकरणे स्त्री लिङ्ग उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रिया दौ च परतः। ह्स्वः। चित्र-गुः। रूपवद्-भार्यः। अनूङ् किम्-वामोरू-भार्यः।

व्याख्याः **स्त्रिया इति**-प्रव त्तिनिमित्त समान होते हुए भी उक्तपुंसक शब्द उससे पर ऊङ् प्रत्यय जहां न हो, ऐसे स्त्रीवाचक शब्द का पुंवाचक के समान रूप हो, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद परे रहते, पूरणी संख्या और प्रिया आदि शब्द परे रहते न हो।

सूत्रस्थित 'भाषितपुंस्कात्' का अर्थ पहले 'उक्तपुंस्कात्' का फिर व त्ति में 'तुल्ये प्रव त्तिनिमित्ते यदुक्तंपुसकम्' यह कहकर स्पष्ट किया गया है। भाषितपुंस्क का लक्षण अजन्त नपुंसकलिङ्ग में 'त तीयादिषु भाषितापुंस्कं पुंवद् गालवस्य सूत्र की टीका में स्पष्ट किया जा चुका है।

'भाषितपुंस्कादनूङ' यह सूत्र स्थित समस्त एकपद है, इसमें पूर्वपद 'भाषितपुंस्क' है और उत्तरपद 'अनूङ्'। पूर्वपद की प चमी विभक्ति का निपातन से लोप नहीं हुआ। 'अनूङ्' इस उत्तरपद में वहुव्रीहि समास है, ऊङो भावो यत्माम्, ऊङ् का अभाव हो जिसमें। 'भाषितपुंस्काद्नूङ्' यह समस्त पद षष्टयन्त है, षष्ठी का निपातन से लोप हुआ है, यह 'स्त्रियाः' का विशेषण है। 'भाषितपुंस्क और ऊङ् रहित जो स्त्रीवाचक पद' यह अर्थ इस प्रकार निकलता है।

पूरणी संख्या तद्धित में आती है। प्रथम, द्वितीय और त तीय आदि क्रमवाचक विशेषण पूरणी संख्या कहे जाते हैं।

चित्र-गुः (चित्रा गावो यस्य चित्र-रङ्गबिरङ्गी गायें जिसकी हों)-यहां चित्रा और गौः इन प्रथमान्तों का षष्ठी विभक्ति के अर्थ में 'अनेकम् अन्य-पदार्थे से समास हुआ। प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सुप् का लोप हुआ। तब प्रक त सूत्र से स्त्रीवाचक चित्रा पद से पुंवद्भाव होने के कारण स्त्रीवाचक टाप् (आ) प्रत्यय हटकर 'चित्र' शब्द बना, क्योंकि यह भाषितपुंस्क है, ऊङ् इसमें नहीं, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद 'गो' परे है और उत्तरपद न पूरणी संख्या है तथा न प्रिया आदि। तब उत्तरपद 'गो' को 'गो-स्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व उकार हुआ, 'एकविभक्ति चापूर्वनिपाते' से विग्रह

में नियतविभक्तिक होने के कारण 'गो' शब्द उपसर्जन है। इस प्रकार 'चित्रगु' यह उकारान्त शब्द बना।

रूपवद्भार्यः (रूपवती भार्या यस्य, जिसकी पत्नी सुन्दर हो)-यहां रूपवती और भार्या इन प्रथमान्तों का समास हुआ। पूर्वपद 'रूपवती' स्त्रीवाचक है, उक्त पुंस्क ऊङ्-रहित है, उत्तरपद 'भार्या' समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग है, इसलिये प्रक त सूत्र से पुंवद्भाव होकर 'रूपवती' का स्त्री-प्रत्यय ङीप् (ई) हट जाता है। तब विग्रह में नियतविभक्तिक होने से उपसर्जनसंज्ञक 'भार्या' पद का 'गो-स्त्रियोरूपसर्जनस्य' से ह्रस्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

अनूङ् इति-सूत्र में 'अनूङ् अर्थात् ऊङ् न होना चाहिये, ऐसा क्यों कहा इसलिए कि-**वामोरू-भार्याः** में वामोरू के ऊकार को ह्रस्व न हो। 'वामोरूःभार्या यस्य, सुन्दर रूपवाली जिसकी भार्या हो, जहां वामोरू में 'संहित-शफ लक्षण-वामादेवश्च' से ऊङ् प्रत्यय हुआ।

अप् पूरणी-प्रमाण्योः 5.4.116

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्तम्, तदन्तात् प्रमाण्यन्ताश्च बहुव्रीहेः अप् स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम् ताःकल्याणी-पञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्री प्रमाणः। अप्रिया दिषु किम्-कल्याणी-प्रियः, इत्यादि।

व्याख्याः **अप् इति**-पूरणार्थ-प्रत्यान्त जो स्त्रीलिङ्ग शब्द, तदन्त और प्रमाणी शब्दान्त बहुव्रीहि में अप् प्रत्यय समासान्त हो।

कल्याणी-पञ्चमा रात्रयः (कल्याणी प चमी यासां रात्रीणाम् जिन रात्रियों में पांचवीं कल्याणमय हो)-यहां उत्तरपद 'प चमी' पूरणार्थ-प्रत्ययान्त, और 'पुवंद-भाव' विधायक पूर्वसूत्र में 'अ-पूरणी-प्रिया दिषु' इस पद से पूरण संख्या परे रहते पुंवद्-भाव के निषेध करने से पुंवद्भाव नहीं हुआ। तब प्रक त सूत्र से अप् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से ईकार का लोप होरक 'कल्याणीप चम' यह अकारान्त प्रातिपदिक बना। पुनः स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'अजा द्यतष्टाप्' से टाप् (आ) प्रत्यय होकर अकारान्त शब्द बनकर प्रथमा के बहुवचन में रूप सिद्ध हुआ।

स्त्री-प्रमाणः (स्त्री प्रमाणी यस्य, जिसे प्रमाण हो, स्त्री की बात को माननेवाला)-यहां भी पूर्ववत् प्रमाणी-शब्दान्त बहुव्रीहि होने से प्रक त सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से ईकार को लोप होकर अकारान्त शब्द बन जाने से प्र. विभक्ति एकवचन में उक्त रूप बना।

अप्रियादिष्विति-पूर्व सूत्र में प्रिया आदि परे रहते पुंवद्भाव नहीं होता ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि-**कल्याणी-प्रियः** यहां पुंवद्भाव न हो। यहां 'कल्याणी प्रिया यस्य-कल्याणी है प्यारी जिसकी' इस विग्रह में बहुव्रीहि हुआ है। पूर्वपद 'कल्याणी' स्त्रीलिङ्ग है उक्तपुंस्क है, ऊङ् भी इसमें नहीं, उत्तरपद समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग है, पर वह 'प्रिया' आदियों में से है, इसलिये पुवंद्भाव नहीं हुआ। 'कल्याणी' ऐसे ही रहा। उत्तरपद को 'गो-स्त्रियोरूपसर्जनस्य' से ह्रस्व हुआ।

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गत् षच् 5.4.113

स्वाङ्गवाचि-सक्थ्यक्ष्यन्ताद् बहुव्रीहेः षच् स्यात्। दीर्घसक्तिः। जल जा क्षी। स्वाङ्गत। किम्-दीर्घ-सक्थि्-शकटम्, स्थूला क्षा-वेणु-यष्टिः 'अक्ष्णो दर्शनाद्' इति वक्ष्यमाणो च्।

व्याख्याः **बहुव्रीहिविति**-स्वाङ्गवाची सक्थि और अक्षि शब्द जिसके अन्त में हों, ऐसे बहुव्रीहि से षच् प्रत्यय समासान्त हो। षच् के षकार और चकार इत्संज्ञक है, केवल अकार बचता है। पित् होने का फल तदन्त शब्द से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'षिद्-गौरा दिभ्यश्च' इस सूत्र से 'ङीप्' प्रत्यय होना है।

दीर्घ-सक्थः (दीर्घे सक्थिनी यस्य-जिसके ऊरु बड़े हों)-यहां दीर्घ और स्वाङ्ग वाची सक्थि-इन प्रथमान्तों का 'अनेकम् अन्य-पदा र्थे' इस सूत्र से बहुव्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से समासान्त षच् प्रत्यय हुआ। 'तस्येति च' से इकार का लोप होने पर अकारान्त शब्द बना। यहां सक्थि स्वाङ्चवाची है, तदन्त बहुव्रीहि होने से प्रक त सूत्र की प्रव त्ति हुई।

जलजा क्षी (जले इव अक्षिणी यस्या, जिसकी आंखें कमल के समान हों)-यहां जलज और स्वाङ्ग-वाचक अक्षि शब्द का बहुव्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से षच् प्रत्यय हुआ। इकार का लोप होने पर 'जलजाक्ष' से षित् होने के कारण ङीष् प्रत्यय होकर रूप बना।

'स्वाङ्ग; की परिभाषा 'स्वाङ्गात् चोसर्जनाद् अ-संयोगोपधात्' इस सूत्र की टीका में मिलेगी। तदनुसार प्राणी में स्थित अंग को स्वाङ्ग कहते हैं, मूर्ति में प्राण नहीं होता, उसके अङ्गों को स्वांग नहीं कहा जाता।

स्वाङ्गात् किमिति-'सक्थि अक्षि शब्द स्वाङ्गवाची होने चाहिये' ऐसा क्यों कहा? इसलिये कि दीर्घ-**सक्थि शकटम्, स्थूला क्षा वेणु-यष्टिः**-इनमें षच् प्रत्यय न हो। 'दीर्घे सक्थिनी यस्य', 'स्थूले अक्षिणी यस्याः' इन विग्रहों में बहुव्रीहि समास हुआ है। 'दीर्घ-सक्थिनी यस्याः' इन विग्रहों में बहुव्रीहि समास हुआ है। 'दीर्घ-सक्थि शकटम्' में शकट प्राणी नहीं है, इसलिये उसके सक्ति की स्वाङ्ग संज्ञा नहीं होती, अतः प्रक त सूत्र की प्रव त्ति नहीं हुई।

'स्थूला क्षा वेणुयष्टिः-बड़ों आंखों वाली बांस की लाठी' यहां वेणुयष्टि प्राणी नहीं है, उसके अक्षि की स्वांग संज्ञा नहीं होती। अतएव प्रक त सूत्र की प्रव त्ति नहीं हो सकती। तब भी आगे आने वाले 'अक्ष्णो दर्शनात्' सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से ईकार का लोप होने पर 'स्थूलाक्ष' यह अकारान्त शब्द बना। तब स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'अजाताद्यतष्टाप्' से टाप् (आ) प्रत्यय होकर आकारान्त 'स्थूलाक्षा, शब्द बना।

अच् और षच् का अन्तर यह है कि षच् होने पर षित् होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होता है और अच होने पर ङीष् न होकर टाप् होता है।

द्वि-त्रिभ्यां ष मूर्ध्नः 5.4.115

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद् बहुव्रीहौ। द्वि-मूर्धः।

व्याख्याः **द्वि-त्रिभ्यामिति**-द्वि और त्रि शब्द से पर मूर्धन् शब्द को समासान्त ष प्रत्यय हो बहुव्रीहि में।

ष प्रत्यय का षकार इत्संज्ञक है, षच् और ष का अन्तर स्वर में पड़ता है। चित् होने से षच् प्रत्ययान्त 'चित्' से अन्यतोदात्त होता है और ष प्रत्ययान्त 'आद्युदात्तश्च' से आद्युदात्त।

द्विमूर्धः (द्वौ मूर्धानौ यस्य, जिसके दो सिर हों)-द्वि और मूर्धन् इन प्रथमान्तों का षष्ठीविभक्ति के अर्थ में बहुव्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से समासान्त ष प्रत्यय हुआ। तब 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप होने पर आकारान्त 'द्वि-मूर्ध' शब्द बना और तब प्रथमा के एक वचन में रूप सिद्ध हुआ।

त्रि-मूर्धः (त्रयो मूर्धानो यस्य, जिसके तीन सिर हों)-इसकी सिद्धि 'द्वि-मूर्धः' के समान होती है।

अन्तर्-बहिर्भ्यां च लोम्नः 5.4.117

आभ्यां लोम्नो प् स्याद् बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः।

व्याख्याः **अन्तरिति**-अन्तर् और बहिस् शब्दों वे पर लोमन् शब्द को अप् समासान्त प्रत्यय हो बहुव्रीहि में।

अन्तर्लोमः-(अन्तर् लोमिनि यस्य, जिसके लोम भीतर हो)-यहां अन्तर् और लोमन् का बहुब्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से समासान्त अप् प्रत्यय हुआ। तब 'नस्तद्धिते' से टि 'अन्' का लोप होकर अकारान्त शब्द बना और प्रथमा के एक वचन में रूप सिद्ध हुआ।

बहिर्लोमः (बहिर्लोमानि यस्य, जिसके लोम बाहर हों)-इसकी सिद्धि 'अन्तर्लोमः' के समान होती है।

पादस्य लोपो- हस्तया दिभ्यः 5.4.138

हस्त्या दिवर्जिताद् उपमानात् परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद् बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य-व्याघ्रपात्। अहस्त्या दिभ्यः किम्-हस्ति-पादः, कुसूल-पादः।

व्याख्याः **पादस्येति**-हस्ति आदि भिन्न उपमान से परे पाद शब्द का लोप समासान्त हो बहुब्रीहि समास में।

लोप यद्यपि अभावरूप है तथापि स्थानी के द्वारा यह समासान्त है। यदि इसे समासान्त न कहा जाय तो यह

'आदेःपरस्य' से आदि को होने लगेगा और 'शेषाद् विभाषा' से होनेवाला समासान्त कप् हो। यह समासान्त कप् तब होता है जब कोई समासान्त प्रत्यय न हुआ हो। लोप को समासान्त मानने से उसके होने पर फिर कप् नहीं होता।

'अलोन्त्य' परिभाषा से लोप अत्त्य अकार को होगा।

व्याघ्र-पात् (व्याघ्रपादौ इव पादौ यस्य, बाघ के पैर के समान जिसके पैर हों)-यहां समास होने पर प्रक त सूत्र से अन्त्य अकार का लोप समासान्त होने पर दकारान्त शब्द बना।

अ-हस्त्यादिभ्य इति-'हस्ती आदि से भिन्न उपमान से पर' ऐसा क्यों कहा?

इसलिये कि **हस्ति-पादः** (हस्तिन पादौ इव पादौ यस्य, हाथी के पैर के समान जिसके पैर हों) और **कुसूलः-पादः** (कुसूलस्य पादौ इव पादौ यस्य कुसूल के पैर के समान जिसके पैर न हों) इनमें लोप न हो।

संख्या-सु-पूर्वस्य 5.4.140

पादस्य लोपः स्यात् समासान्तो बहुव्रीहौ। द्वि-पात्। सु-पात्।

व्याख्याः **संख्येति**-संख्या और सु जिसके पूर्व में हो, ऐसे पाद शब्द का लोप समासान्त हो बहुव्रीहि में

द्वि-पाद् (द्वौ पादौ यस्य, दो पैरवाला, मनुष्य आदि)-यहां प्रथमान्त द्वि और पाद शब्दों का षष्ठीविभक्ति के अर्थ में बहुव्रीहि समास हुआ। तब संख्या पूर्व में होने से पाद शब्द के अन्त्य का प्रक त सूत्र से समासानत लोप होकर हलन्त रूप सिद्ध हुआ।

सु-पात् (शोभनौ पादौ यस्य, अच्छे पैर वाला)-यहां पाद शब्द के पूर्व सु शब्द है, इसलिये प्रक त सूत्र से समासान्त लोप हुआ।

उद्विभ्यां काकुदस्य 5.4.148

लोपः स्यात्। उत्-काकुत् वि-काकुत्।

व्याख्याः **उद्-विभ्यामिति**-उद् और वि से पर 'काकुद'-शब्द का समासान्त लोप हो बहुब्रीहि समास में

उत्-काकुत् (उन्नतं काकुदं यस्य, जिसका तालु ऊपर से उठा हो)-यहां उद् और काकुद का बहुब्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से समासान्त लोप होकर शब्द बना।

वि-काकुत् (विगतं काकुदं यस्य, जिसका तालु विक त हुआ हो)-इसकी सिद्धि भी पूर्ववत् होती है।

पूर्णाद् विभाषा 5.4.149

पूण-काकुत्, पूर्ण-काकुदः।

व्याख्याः **पूर्णादिति**-पूर्ण शब्द से पर काकुद का समासान्त लोप विकल्प से हो बहुब्रीहि में।

पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदम् (पूर्ण काकुदं यस्य, पूर्ण तालु जिसका हो)-यहां पूर्ण और काकुद का बहुब्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से समासान्त लोप हुआ। लोप-पक्ष में शब्द हलन्त बना और अभावपक्ष में अकारान्त।

सुहृद्-द र्हृदौ मित्रा मित्रयोः 5.4.150

सु-दुर्भ्यां हृदयस्य 'हृद्'-भावो निपात्यते। सु-र्हृद्-अमित्रः।

व्याख्याः **सुहृदिति**-सु और दुर् से पर हृदय शब्द को निपातन से हृद् हो क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में बहुब्रीहि समास में

सु-हृद (शोभनं हृदयं यस्य, मित्र)-सु और हृदय का बहुब्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से हृदय शब्द को हृद् आदश निपातन से होने पर रूप सिद्ध हुआ।

उरःप्रभ तिभ्यःकप् 5.4.151

व्याख्याः **उर इति**-उरस् प्रभ तियों से समासान्त कप् प्रत्यय हो बहुब्रीहि में। कप् का पकार इत्संज्ञक है, क शेष रहता है।

कस्का दिषु च 8.3.48

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य विसर्गस्य षः, अन्यस्य तु सः। इति सः व्यूढोरस्कः। प्रिय-सर्पिष्क5।

व्याख्याः **कस्कादिष्विति**-'कस्क' आदि गण में पढ़े हुए शब्दों में इण् से उत्तर विसर्ग को पकार हो, अन्य विसर्ग को अर्थात् जो इर्ण से परे न हो, को सकार हो।

व्यूढोरस्कः (व्यूढम् उदो यस्य, विशाल वक्षःस्थल वाला)-यहां व्यूढ ओर उरस्-इन प्रथमान्तों का षष्ठी के अर्थ में बहुव्रीहि समास होने पर पूर्व सूत्र से कप समासान्त प्रत्यय हुआ। सकार को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होने पर प्रक त सूत्र के द्वारा इस से पर विसर्ग से भिन्न होने के कारण उनके स्थान में सकार होकर तब रूप सिद्ध हुआ।

प्रिय-सर्पिष्कः (प्रियं सर्पिः यस्य, घी जिसके प्रिय हो)-यहां प्रिय और सर्पिस् का समास होने पर पूर्व सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय हुआ। तब सकार को विसर्ग होने पर इण् इकार से पर होने के कारण विसर्गों के स्थान में प्रक त सूत्र से मुर्धन्य षकार होकर रूप सिद्ध हुआ।

निष्ठा 2.2.36

निष्ठा न्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। युक्त-योगः।

व्याख्याः **निष्ठेति**-निष्ठान्त पद का बहुब्रीहि से पहले प्रयोग हो।

युक्त-योगः (युक्तो योगो येन यस्य वा, सिद्ध योगी)-यहां युक्त और योग का बहुव्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से निष्ठान्त युक्त शब्द का पूर्व प्रयोग हुआ।

शेषाद् विभाषा 5.4.154

अनुक्त-समासान् ताद् बहुव्रीहेःकप् वा। मृहा-यशस्कः, महा-यशाः।

व्याख्याः **शेषादिति**-शेष, जिसे समासान्त नहीं कहा गया, ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय विकल्प से हो।

शेष का अर्थ यहां है, जिससे किसी समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया। शेष से इसका विधान होने से इसे शैषिक कप् कहते हैं।

महा-यशस्कः, महा-यशाः (महद् यशो यस्य, बड़ा यशस्वी)-यहां महत् और यशस् इन प्रथमान्तों का षष्ठी के अर्थ में बहुव्रीहि समास होने पर प्रक त सूत्र से कप् प्रत्यय विकल्प से हुआ, क्योंकि यह शेष है, इससे किसी अन्य समासान्त प्रत्यय का विधान नहीं किया गया। 'आत् (न्) महत् समानाधिकरण-जातीययोः' इससे महत् शब्द को आकार अन्तादेश होकर 'कप्' पक्ष में पहला और कप् के अभापक्ष में दूसरा रूप सिद्ध हुआ।

बहुव्रीहि समाप्त

अथ द्वन्द्वः

चा र्थे द्वन्द्वः 2.2.29

अनेकं सुबन्तं चा र्थे वर्तमानं व समस्यते; स द्वन्द्वः। समुच्चाया न्वाचयेतरेतरयोग-समाहाराःचा र्था। तत्र 'ईश्वरं गुरूं च भजस्व' इति परस्पर-निरपेक्षस्या नेकस्यैकस्मिन् अन्वयः समुच्चयः। भिक्षाम् अट गां चा नय इति अन्यतरस्या नुषङ्गिकत्वेना न्वयः-अन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। 'धव-खदिरौ छिन्धि' इति मिलिताम् अन्वयः-इतरेतरयोगः। संज्ञा-परिभाषम् (इति) समूहः-समाहारः।

व्याख्याः **चार्थे इति**-'च' के अर्थ में वर्तमान अनेक सुबन्तों का समास होता है और उसकी द्वन्द्व संज्ञा होती है।

समुच्चयेति-समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर-योग और समाहार-ये चार 'च' निपात के अर्थ हैं।

इनके क्रमशः सोदाहरण लक्षण दिये जाते हैं।

1. समुच्चय-परस्पर-निरपेक्ष अनेक पदार्थों के एक पदार्थ में अन्वय को समुच्चय कहते हैं। जैसे-**ईश्वरं गुरूं च भजस्व**-ईश्वर और गुरू की सेवा करो-'इस वाक्य में ईश्वर और गुरू पदार्थ निरपेक्ष हैं, एक दूसरे की अपेक्षा नहीं करते, दोनों का स्वतन्त्र रूप से भजन क्रिया में अन्वय होता है। अतः यहां 'च' का अर्थ **समुच्चय** है।

2. **अन्वाचय**-जब समुच्चय में आने वाले-जिनका समुचय हो रहा हो, पदार्थों में एक का आनुषङ्गिकतया-गौणरूप से-अन्वय हो, तब उसे अन्वाचय कहते हैं। जैसे-भिक्षाम् अट गा् चा नय-भिक्षा के लिये जाओं और गाय भी लाओ। यहां प्रधानकार्य भिक्षा मांगना है, भिक्षा के लिये घूमते यदि गाय मिल जाए तो उसे भी ले आना, इस प्रकार गाय लाना गौण कार्य है, आनुषङ्गिक है। उसके लिए विशेष यत्न की आवश्यकता नहीं, भिक्षार्थ घूमते यदि गाय दीख पड़े तो लाना-इस अभिप्राय के कारण यहां भिक्षा के लिए जाना और गाया लाना, इन पदार्थों में गाय का लाना गौण होने से चकार का अर्थ **अन्वाचय** है।

अन्योरिति-समुच्चय और अन्वाचय-इन दो अर्थों में सामर्थ्य न होने के कारण समास नहीं होता। समुच्चय में दोनों पदार्थ निरपेक्ष रहते हैं और सामर्थ्य दोनों के सापेक्ष रहने पर होता है इसलिये इसमे सामर्थ्य नहीं। अन्वाचय में एक अर्थ गौण रहता है, दोनों समकक्ष नहीं रहते, इसलिये सामर्थ्य नहीं।

3. **इतरेतर-योगः**-जब पदार्थ मिलकर आगे अन्वित होते हैं तब उसे इतरेतर-योगः कहते हैं। जैसे-धवखदिरौ छिन्धि-धव और खैर को काटो। यहाँ धव और खदिर पदार्थ मिलकर आगे छेदन क्रिया में अन्वित होते हैं, इसलिये यहाँ **इतरेतर योग** है। इतर का इतर से योग सम्बन्ध-यह इतरेतरयोग का शब्दार्थ है।

4. **समाहार**-समूह को समाहार कहते हैं। इसमें पदार्थों का अन्य पदार्थ के साथ प थक-प थक अन्वय नहीं होता जैसे इतरेतरयोग में, अपितु पदार्थों के समूह का अन्वय होता है। जैसे **संज्ञापरिभाषम्**-संज्ञा च परिभाषा च-संज्ञा और परिभाषा का समूह।

चकार के इतरेतरयोग और समाहार-इन दो अर्थों में सामर्थ्य रहता है, अतः इनमें प्रक त सूत्र से समास हो जाता है। इसलिये इनके उदाहरणों में, धव-खदिरौ, संज्ञा-परिभाषम्-यहाँ समास हुआ है।

ये अर्थ समास के द्वारा प्रतीत होते हैं-इसलिये लौकिक विग्रह वाक्य में चकार का प्रयोग होने पर भी समास नहीं होता। अलौकिक विग्रह में भी इसलिये चकार का प्रयोग नहीं किया जाता।

द्वन्द्व समास भी दो अधिक पदों का होता है। इसमें सभी पदार्थ प्रायः प्रधान होते हैं। इसलिये किस पद को पहले रखा जाय यह प्रश्न हल नहीं होता, समासविधायक सूत्र में 'अनेकम्' इस प्रथमान्त पद के द्वारा सभी का बोध होता है, सभी की उपसर्जन संज्ञा होती है, उपसर्जन होने से सभी का पूर्व प्रयोग प्राप्त होता है। अतः इच्छानुसार किसी को भी पहले रखा जा सकता है। जहाँ इच्छानुसार कार्य नहीं हो सकता, वहाँ के लिये नियम बने हैं, वे आगे दिये जाते हैं।

राजदन्ता दिषु परम् 2.2.31

एषु पूर्व-प्रयोग हैं परं स्यात्। दन्तानां राजा-राजदन्तः।

व्याख्याः **स**सुहृद्-द र्हदौ मित्रा मित्रयोः 5.4.150

सु-दुर्भ्यांहृदयस्य 'हृद्'-भावो निपात्यते। सु-र्हृद्-अमित्रः।

व्याख्याः 'राज-दन्त' आदि शब्दों में जिस पद का पूर्व प्रयोग प्राप्त हुआ हो, उसे आगे रखा जाय।

राज-दन्तः (दन्तानां राजा, दातों का राजा)-यहाँ 'षष्ठी 2.2.8' इस सूत्र से समास हुआ। समासशास्त्र में स्थित प्रथमान्त 'षष्ठी' पद के द्वारा बोध्य होने से उपसर्जन की संज्ञा होने के कारण दन्त शब्द का पूर्व निपात अर्थात् पूर्व प्रयोग प्राप्त था। प्रक तसूत्र से उसका प्रयोग आगे हुआ।

इसी प्रकार राज-वैद्य आदि अनेक शब्द भी बनते हैं। इन समस्त पदों में 'राज' पद का प्रयोग पहले होने से 'राज्ञः दन्ताः' राज्ञः वैद्यः-राजा के दांत, राजा का वैद्य, इस रूप में भ्रम न करना चाहिए-क्योंकि 'राज' पद का पूर्व प्रयोग यहाँ प्रक त सूत्र के विशेष नियम से हुआ है।

राजदन्तादियों में द्वन्द्व के भी प्रयोग हैं, उन्हीं को दिखाने के लिए यहाँ यह सूत्र दिया गया है।

(वा) धर्मादिष्वनियमः। अर्थ-धर्मो, धर्म र्थो इत्यादि।

व्याख्याः **धर्मा दिश्विति**-धर्म, अर्थ आदि शब्दों में किसको पहले रखा जाय-इसका कोई नियम नहीं अर्थात् इच्छानुसार किसी को भी पहले रखा जा सकता है।

अर्थ-धर्मौ, धर्मा र्थौ (अर्थश्च धर्मश्च-धर्म और अर्थ)-यहाँ 'चार्थे द्वन्द्वः' से चकार के अर्थ इतरेतरयोग में वर्तमान धर्म और अर्थ शब्दों का 'धर्म सु अर्थ सु' इस अलौकिक विग्रह में समास हुआ, तब प्रातिपादिक संज्ञा होने पर सुप् दोनों सु का लोप हुआ। पूर्व प्रयोग का नियम न होने से भी कभी अर्थशब्द का और कभी धर्म शब्द का पहले प्रयोग हुआ। तब दो पदार्थ होने से द्विवचन में रूप सिद्ध हुए।

द्वन्द्वे घि 2.2.32

द्वन्द्वे घि-संज्ञं पूर्व स्यात्। हरिश्च हरश्च-हरि-हरौ।

व्याख्याः द्वन्द्व में घिसंज्ञक पद का पहले प्रयोग हो।

हरि-हरौ (हरिश्च हरश्च-विष्णु और शिव)-यहाँ घि-संज्ञक होने से हरि शब्द का प्रयोग पहले हुआ।

अजा द्यदन्तम् 2.2.33

इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईश-क ष्णौ।

व्याख्याः अजादि और अदन्त पद का द्वन्द्व में पहले प्रयोग हो।

ईश-क ष्णौ (ईशश्च क ष्णश्च, शिव और क ष्ण)-यहाँ द्वन्द्व समास होने पर अजादि और अदन्त होने के कारण ईश का पहले प्रयोग हुआ।

अल्पा च्-तरम् 2.2.34

शिव-केशवौ।

व्याख्याः जिस पद में अन्य पदों की अपेक्षा थोड़े अच् हों, द्वन्द्व में उसका पहले प्रयोग हो।

शिव-केशवौ (शिवश्च-शिव और विष्णु)-यहाँ केशव पद में तीन अच् हैं और शिव में दो। 'केशव' पद की अपेक्षा थोड़े अच् हो, द्वन्द्व में उसका पहले प्रयोग हो।

पिता मात्रा 1.2.70

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च-पितरौ, माता-पितरौ वा।

व्याख्याः माता के साथ कथन होने पर पिता पद विकल्प से शेष रहता है।

पितरौ (माता च पिता च, माता और पिता)-यहाँ माता के साथ पिता का कथन हुआ है, दोनों पदों का द्वन्द्व समास होने पर पित पद शेष रहा 'यः शिष्यते', स लुप्यमाना र्थोभिधायी भवति-जो शेष रहता है वह लोप होने वाले के अर्थ को भी कहता है-इस सिद्धान्त के अनुसार शेष रहा हुआ 'पित ' शब्द मात शब्द का भी अर्थ प्रकअ करता है। इसीलिये दोनों का प्रतिपादक होने से द्विवचन हुआ।

माता-पितरौ-एक शेष के अभाव में 'पित दर्शगुणा माता गौरवेणा तिरिच्यते-गौरव से माता पिता से दशगुना अधिक है' इत्यादि वचनों से अभ्यर्हितपूज्य होने के कारण (वा) 'अभ्यर्हितं च' वार्तिक मात शब्द का पूर्व निपात हुआ। तब 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' पूर्वपद मात के ऋकार को आनङ् होकर मातापित शब्द बना। दो का प्रतिपादक होने से इससे द्विवचन हुआ।

इन समासों का-जिन में एक शेष रहता है-एक शेष रहता है।